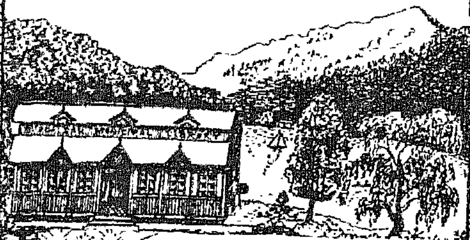


सीमान्त

विश्व कवि रवीन्द्र नाथ ठाकुर के दो प्रसिद्ध लघु उपन्यास
एवं छः शिक्षाप्रद कथाओं का हिन्दी भाषानुवाद

श्री शरण

प्रकाशक
नारायण दत्त सहगल एण्ड सन्ज
देहली

प्रकाशक :—
नारायणदत्त सहगल एण्ड सन्ज़
देहली

प्रथम संस्करण १९५६

मूल्य :—दो रुपये आठ आने

मुद्रक
गुप्ता प्रिंटिंग एजन्सी द्वारा
दीपक प्रिंटिंग प्रेस देहली ।

SIMANT TEGORE Rs. 2/8/-

विषय सूची

सीमान्त

उस दिन सवेरे कुछ ठंड थी; परन्तु दोपहर के समय हवा गर्मी पाकर दक्षिण दिशा की ओर से बहने लगी थी। यतीन जिस बरामदे में बैठा हुआ था, वहाँ से उद्यान के एक कोने में खड़े हुए एक ओर के कटहल और दूसरी ओर के शिरीष वृक्ष के बीच से बाहर का मैदान दिखाई पड़ता है। वह सुनसान मैदान फाल्गुन की धूप में धू-धू कर के जल रहा था। उसी से सटा हुआ एक कच्चा रास्ता निकल गया है। उसी पर एक खाली बैलगाड़ी धीमी चाल से गांव की ओर लौट रही थी और गाड़ीवान धूप से बचने के लिए सिर पर लाल रंग का गमछा लपेटे मस्ती में किसी गीत की कड़ियां दोहराता हुआ जा रहा था?

ठीक इसी समय पीछे से किसी नारी का मधुर और हास्य स्वर फूट पड़ा—"क्यों यतीन, क्या बैठे बैठे अपने पिछले जन्म की किसी बात को सोच रहे हो?" यतीन ने सुना और पीछे की ओर देख कर कहा—"क्या मैं ऐसा ही हतभागा हूँ पटल, जो सोचते समय पिछले जन्म के विचारे बिना काम ही नहीं चलेगा।"

अपने परिवार में पटल नाम से पुकारी जाने वाली वह बाला बोल उठी—"झूठी शेखी मत मारो यतीन; तुम्हारे इस जन्म की सारी बातें मुझे मालूम हैं। छिः! छिः! इतनी उम्र हो गई, फिर भी एक बहू घर में न ला सके। हमारा जो धनेसर माली है, उसकी भी एक घरवाली है। रात दिन उसके साथ लड़ झगड़ कर

मौहल्ले भर के लोगों को वह कम से कम इतना तो बता देती है, कि उसका भी इस दुनिया में अस्तित्व है। तुम तो मैदान की तरफ मुंह करके ऐसे भाव दर्शा रहे हो, मानो किसी पूनम के चांद से सलोने मुखड़े का ध्यान करने के लिए बैठे हो? तुम्हारी इन चालाकियों को मैं खूब समझती हूँ। यह सब लोगों को दिखाने के लिए ढोंग रच रखा है। देखो यतीन, जाने माने ब्राह्मण के लिए जनेऊ की आवश्यकता नहीं पड़ती। हमारा वह धनेसर माली तो कभी विरह का बहाना करके इस सुनसान मैदान की ओर दृष्टि गड़ाये बैठा नहीं रहता। जुदाई की लम्बी घड़ियों में भी उसे वृक्ष के नीचे हाथों में खुरपी थामे समय काटते देखा है; किन्तु उसकी आंखों में ऐसी खुमारी नहीं देखी। एक तुम हो, जिसने सात जन्म से कभी बहू का सलोना मुखड़ा नहीं निहारा। बस अस्पताल में शव की चीर फाड़ कर के और मोटे २ पोथे रट २ कर उम्र के सुहावने दिन काट दिए। अब आखिर, इस चिलचिलाती दोपहरी में तुम इस प्रकार ऊपर की ओर टकटकी बांधे क्या देखते रहते हो, कुछ कहो तो? नहीं, ये सब व्यर्थ की चालाकियाँ मुझे अच्छी नहीं लगतीं। देख २ कर सारा बदन अन्तर की ज्वाला से जलने लगता है।"

यतीन ने सुना और हाथ जोड़ कर कहा—"चलो, रहने भी दो। मुझे व्यर्थ में वैसे ही लज्जित मत करो। तुम्हारा वह धनेसर माली ही सब प्रकार से धन्य रहे। उसी के आदर्शों पर मैं चलने का यत्न करूँगा बस, अब देर नहीं, सवेरे उठते ही सामने लकड़ियाँ बीनने वाली जिस किसी बाला का मुंह देखूँगा उसी के गले में स्नेह से गूंथी हुई फूलों की माला डाल दूंगा। तुम्हारे ये कटाक्ष भरे शब्द अब मुझ से नहीं सहन होते।"

"बात निश्चित रही न—" पटल ने पूछा।

"हां।"

"तब चलो मेरे साथ।"

यतीन कुछ भी न समझ सका। उसने पूछा—"कहाँ ?"

पटल ने उसे उठाते हुए कहा—"चलो तो सही।"

परन्तु यतीन ने हाथ छुड़ाते हुए कहा—"नहीं, नहीं, अवश्य तुम्हें कोई नई शरारत सूझी है। मैं अभी तुम्हारे साथ नहीं जाने का हूँ।"

"अच्छा, तो यहीं पड़े रहो—" पटल ने रोष भरे शब्दों में कहा और शीघ्रता के साथ अन्दर चली गई।

यतीन और पटल की आयु में बहुत थोड़ा अन्तर है; और वह है सिर्फ एक दिन का। पटल यतीन से बड़ी थी, चाहे उसे यह बड़ापन एक ही दिन का मिला हो; लेकिन इस एक दिन के लिए यतीन को उसके लिए लोकाचार हेतु सम्मान दिखाना होगा, यह यतीन को बिल्कुल भी स्वीकार नहीं। दोनों का सम्बन्ध चचेरे भाई बहन का है और बचपन एक साथ ही खेल कूद में बीता है। यतीन के मुख से 'दीदी' शब्द न सुनकर पटल ने अनेकों बार पिता और चाचा से उसकी शिकायत की; परन्तु किसी प्रकार से भी इसका खास फल निकला हो, ऐसा नहीं जान पड़ता। संसार में इस एक छोटे भाई के पास भी पटल का छोटा सा मामूली नाम 'पटल' आज तक नहीं छिप सका।

पटल देखने में खासी मोटी-ताजी, गोल-मटोल लड़की है। उसके प्रसन्न मुख से किए जाने वाले आश्चर्य जनक हास-परिहासों को रोकने की ताकत समाज में भी नहीं थी। उसका चेहरा सास मां के सामने भी गम्भीरता का साम्राज्य स्थापित नहीं कर सका। पहले पहल वह इन बातों के कारण इस नये घर में चर्चा का केन्द्र बनी रही। अन्त में स्वयं पराजित होकर परिजनों को कहना पड़ा—"इस बहू के तो ढंग ही अनोखे हैं।"

कुछ दिनों के बाद तो इसकी सुसराल में यहाँ तक नौबत आगई, कि इस के हास्य के आघात से परिजनों का गाम्भीर्य भूमिसात हो गया ; क्यों कि पटल के लिए किसी का भारी जी और मुंह लटकाना देखना असम्भव है ।

पटल के पति हरकुमार बाबू डिप्टी मजिस्ट्रेट हैं । बिहार के एक इलाके से उनकी तरक्की करके उन्हें कलकत्ते के आबकारी विभाग में उच्च पद पर ले लिया गया है । प्लेग के भय से कलकत्ता के बाहर उपनगर में एक किराये के मकान में रहते हैं और वहीं से अपने काम पर कलकत्ते आया जाया करते हैं । मकान के चारों ओर बड़ी चारदीवारी है और उसी में एक छोटा सा बगीचा है ।

इस आबकारी के विभाग में हरकुमार बाबू को अक्सर दौरे के रूप में अनेक गाँवों का चक्कर काटना पड़ता है । पटल इस मौके पर अकेली रह जाती है, जो उसे खलता है । वे इस बात को दूर करने के लिए किसी आत्मीयजन को घर से बुलाने की सोच रहे थे, कि उसी समय हाल ही में डाक्टरी की उपाधि से सुशोभित यतीन चचेरी बहन के निमन्त्रण पर एक सप्ताह के लिए वहाँ आ पहुंचा ।

कलकत्ते की प्रसिद्ध अंधेरी गलियों में से होकर पहली बार पेड़-पत्तों के बीच आकर आज यतीन इस सूने बरामदे में फाल्गुन की दुपहरिया में आत्म विभोर बैठा था, कि पटल पीछे से आकर यह नई शरारत कर गई । पटल के चले जाने के बाद वह कुछ देर के लिए निश्चित होकर बैठ गया । बीनने वाली लड़कियों का जिक्र आजाने के कारण यतीन का मन बचपन में सुनी, परी देश की रोचक कथाओं के गली कूंचों में चक्कर काटने लगा ।

पर कहाँ ? अभी कुछ क्षण भी नहीं बीते होंगे, कि पटल का हास्य से भरा हुआ चिर परिचित स्वर यतीन के कानों में पड़ा। उसे सुन कर वह चौंक पड़ा। उसने मुड़कर देखा पटल किसी बालिका को खींचे ला रही थी ? इतना देखकर यतीन ने मुख फेर लिया। तभी पटल ने उस बालिका को यतीन के सामने कर के पुकारा—" चुनिया !" बालिका ने अपना नाम सुन करके कहा—" क्या है दीदी ?"

पटल ने चुनिया का हाथ छोड़ते हुए कहा—" मेरा यह भाई कैसा है ? देख तो भला।"

चुनिया जो अब तक गर्दन झुकाये हुए थी निःसंकोच यतीन के चेहरे की ओर निहारने लगी।

उसे ऐसा करते हुए देख, पटल ने पूछा —" क्यों री, देखने में तो अच्छा लगता है न ?"

चुनिया ने शान्त स्वर से सिर हिलाते हुए कहा—"हां ! अच्छा ही है।"

यतीन ने देखा और सुना, फिर लज्जावश कुर्सी से उठता हुआ बोला—"ओह पटल ! यह क्या लड़कपन है ?"

" मैं लड़कपन कर रही हूँ या तुम व्यर्थ में ही बुढ़ापा दिखला रहे हो—" पटल ने यतीन के शब्दों को सुन कर निःसंकोच कहा।

"अब बचना मुश्किल है "—यतीन के होठों से शब्द निकले और वह वहाँ से भाग गया पटल ने उसका पीछा किया और भागती हुई बोली। "अरे ! सुनो तो, भय की कोई बात नही है, यतीन तनिक भी नहीं है। कौन तुम्हारे गले में अभी माला डाल रहा है ? फाल्गुन-चैत में तो इस बार कोई लगन ही नही पड़ती, अभी बहुत समय है।"

वे दोनों उस जगह से चले गये; परन्तु चुनिया आश्चर्य चकित अवस्था में वहीं खड़ी रह गई। उसके इकहरे बदन ने तनिक भी जुम्बिश न की। उसकी आयु लगभग १६ ही वर्ष की होगी। उसके सलोने मुख का वर्णन पूर्णतया लेखनी से नहीं किया जा सकता ; पर इतना अवश्य लिखा जा सकता है, कि उस में ऐसी आकर्पण शक्ति है, जो देखते ही बन की मृगी की याद दिला देती है। साहित्यिक भाषा में कहने की आवश्यकता पड़े तो उसे निर्बुद्धि भी कहा जा सकता है; किन्तु मूर्ख के साथ उसकी उपमा नहीं दी जा सकती है। हां, अपने समाधान के लिए यह अवश्य सोचा जा सकता है, कि बुद्धिवृत्ति पूर्ण विकसित नहीं हुई है ; लेकिन इन सब बातों से चुनिया का सौन्दर्य घटा नहीं ; अपितु उस में एक विशेपता ही आगई है।

संध्या को हरकुमार बाबू ने कलकत्ते से लौट कर यतीन को देखा तो वे बहुत प्रसन्न हुए और उसी मुद्रा में बोले—"तुम आ पहुँचे, चलो बड़ा ही अच्छा हुआ।"

और फिर दफ्तर के कपड़े बदलकर जल्दी से उसके पास बैठ कर कुछ व्यस्त भाव से बोले-"यतीन ! तुम्हें जरा डाक्टरी करनी होगी। अकाल के दिनों में जब हम पश्चिम की ओर रह रहे थे ; तभी से एक लड़की को पाल रहे हैं। पटल उसे चुनिया कहकर पुकारती है। उसके मां बाप और वह, सब बाहर मैदान के पास ही एक पेड़ के नीचे पड़े हुए थे। सूचना मिलते ही मैंने बाहर जाकर देखा, तो बेचारे मां बाप दुनिया के झंझटों से मुक्ति पा चुके थे, सिर्फ लड़की के प्राण अभी बाकी थे मैंने उस लड़की को वहां से उठाकर पटल को सौंप दिया। पटल ने अपना उत्तरदायित्व समझा और बड़ी सेवा जतन के बाद उसे बचाने में समर्थ हुई।

"उसकी जाति के विषय में कोई कुछ नहीं जानता ? यदि उस

ओर से कोई ऐतराज भी करता है तो पटल कहती है वह द्विज है। एक बार मर कर फिर से जो इस घर में जन्मी है। इस लिए इस की मूल जाति तो कभी की मिट चुकी है।

"पहले पहल उसने पटल को मां कहकर पुकारना शुरू किया था; पर पटल को इस में लज्जा का भास होता था। अतः पटल ने उसे धमकाते हुए कहा—"खबरदार! मुझे अब से मां मत कहना। दीदी कहकर भले ही पुकार सकती हो' पटल कहती है, 'अरे, इतनी बड़ी लड़की यदि मुझे मां कहेगी तो मैं अपने आप को बुढ़िया समझने लगूँगी'··"

हरकुमार बाबू ने लम्बी सांस खींच कर पुनः कहा—"यतीन एक बात और भी है। शायद उन अकाल के दिनों में या फिर किसी अन्य कारण वश चुनिया को रह-रह कर शूल की तरह पीड़ा उठा करती है। असल बात क्या है, सो तुम्हीं को अच्छी तरह डाक्टरी परीक्षा करके समझना होगा············अरे, ओ तुलसी, चुनिया को तो बुला ला।"

हरकुमार बाबू के इस लम्बे व्याख्यान की समाप्ति पर यतीन खुल कर सांस भी न ले सका था, कि चुनिया केश बांधती हुई, अपनी आधी बंधी वेणी को पीठ पर लटकाये कमरे में दाखिल हुई। अपनी बड़ी-बड़ी गीली आंखों को एक बार दोनों व्यक्तियों पर डालकर चुप-चाप खड़ी हो गई।

हरकुमार बाबू सब की चुप्पी को तोड़ कर बोले—"तुम तो व्यर्थ में ही संकोच कर रहे हो यतीन। यह तो देखने भर की बड़ी है। कच्चे नारियल की तरह इसके भीतर सिर्फ स्वच्छ तरल द्रव्य ही छलक रहा है; कठोर गरी की रेखा मात्र भी अभी तक फूटी नहीं है। यह बेचारी कुछ भी समझती बूझती नहीं है। इसे तुम नारी समझने की भूल मत कर बैठना। यह तो जंगल की भोली भाली मृगी मात्र है।"

यतीन चुपचाप अपने डाक्टरी फर्ज को पूरा करने में लग गया। चुनिया ने भी किसी प्रकार का संकोच नहीं किया और न आपत्ति ही उठाई ? यतीन ने थोड़ी देर तक चुनिया के शरीर की जांच पड़ताल करके कहा—"शरीर यंत्र में कोई विकार पैदा हुआ हो ? ऐसा तो दिखाई नहीं देता।"

पटल ने उसी क्षण आंधी के समान वहाँ पहुँच कर कहा—"हृदय यंत्र में भी कोई विकार पैदा नहीं हुआ है यतीन। परीक्षा करना चाहते हो क्या ?............अच्छी बात है।"

और फिर वह चुनिया के पास जा कर उसकी ठोड़ी छूती हुई बोली—"चुनिया ! मेरा यह भाई तुझे पसंद आया न ?"

चुनिया ने सिर हिला कर कहा—"हां।"

पटल ने फिर पूछा—"मेरे इस भाई से विवाह करेगी।"

चुनिया ने इस बार भी वैसे ही सिर हिला कर कहा—"हां।"

पटल और हरकुमार बाबू दोनों ही हँस पड़े। चुनिया इस खेल के मर्म को समझ कर भी उन्हीं का अनुकरण किए, हँसी से घिरा चेहरा लेकर एक टक ताकती रह गई।

यतीन का चेहरा लज्जा से लाल हो उठा। वह कुछ परेशान सा हो कर बोला—"ओह, पटल ! तुम बहुत ज्यादती कर रही हो। यह तो सरासर अन्याय है। हरकुमार बाबू भी तो तुम्हें बहुत बढ़ावा दे रहे हैं।"

पटल के कुछ कहने से पूर्व हरकुमार बाबू बोले—"यदि ऐसा न करूं तो मैं इस से प्रश्रय पाने की प्रत्याशा कैसे कर सकता हूँ.....तनिक बताओ तो सही ? लेकिन यतीन, चुनिया को तुम नहीं जानते, इसी कारण तुम इतने हैरान हो रहे हो। दिखाई देता है, तुम स्वयं लजा-लजा कर चुनिया को भी लजाना

सिखा दोगे। ज्ञान वृक्ष का फल उसे दया कर मत खिलाओ। आज तक हम सब ने सरल भाव से उसके साथ खेल किया है। अब तुम यदि बीच में आकर गम्भीरता दिखाने लगोगे तो यह उसके लिए बड़ा असंगत सा मामला हो जायेगा……।"

तभी पटल बोल उठी—"इसी से तो यतीन के साथ मेरी कभी नहीं बनी। बचपन से लेकर आज तक सिर्फ झगड़ा ही हुआ है। यतीन आवश्यकता से अधिक गम्भीर है।"

हरकुमार बाबू किसी रहस्य के मर्म को समझते हुए बोले—"शायद इसी कारण से वाक् युद्ध करना तुम्हारी आदत बन गई है। जब भाई साहब नौ दो ग्यारह हुए तो फिर मुझ गरीब……।"

पटल ने तुनक कर कहा—"फिर वही झूठ! भला आप से झगड़ा करने में कौन सा सुख पा जाती हूँ……इस लिए मैं उसकी चेष्टा ही नहीं करती?"

"मैं शुरू में ही हार मान लेता हूं—" हरकुमार बाबू ने पटल को चिढ़ाने के अभिप्रायः से उत्तर दिया।

"बड़ी बहादुरी दिखाते हो न, शुरू में हार कर, यदि मेरी अंत में मान लेते, तो कितनी खुशी मुझे होती। आपने कभी समझने का भी प्रयत्न किया है इसे।" इतना कह कर पटल चुनिया को लेकर वहां से चली गई। उसके जाते ही कमरे में नीरवता का आवरण छा गया। वे दोनों एक दूसरे को देखते हुए शान्त बैठे रहे। थोड़ी देर के बाद तुलसी ने भोजन की सूचना दी। हरकुमार बाबू यतीन को लेकर तुलसी के पीछे रसोई घर में पहुंच गये। पटल वहां न थी। चुनिया ने ही खाना परोसने का काम किया। दोनों भोजन करने बैठ गये। खाते समय बातें करना सभ्यता के विरुद्ध समझ कर हरकुमार बाबू ने बोलना उचित नहीं समझा……इस प्रकार वह वातावरण शान्त ही बना रहा।

: २ :

यतीन सारी रात अपने कमरे की खिड़कियाँ खोल कर जाने क्या २ सोचता रहा ? जिस लड़की ने अपने मां बाप को मरते देखा है। उसके जीवन पर कैसी भयंकर छाया आकर पड़ी होगी ? ऐसी विदारक घटना के भीतर से आज वह इतनी बड़ी हुई है। उसे लेकर भला कहीं परिहास किया जा सकता है। यही अच्छा हुआ, जो विधाता ने कृपा करके उस की बिकसित बुद्धि पर एक आवरण डाल दिया है। यदि किसी कारण वश वह आवरण कभी उठ जाये, तो भाग्य की रुद्र लीला का कैसा भयंकर चिह्न लक्षित हो उठेगा ?

यतीन जब फाल्गुन की दुपहरिया में वृक्षों के अंतराल से आकाश की ओर निहार रहा था और कटहल की कलियों की मादक सुगन्ध ने मृदुतर होकर गंध शक्ति को चहूं ओर से घेर रखा था, तो उस समय उस के मन ने सारी दुनिया को माधुर्य के कुहरे से ढके हुए देखा था, लेकिन अब इस बुद्धि-हीन लड़की ने अपनी हिरनी जैसी आंखों द्वारा उस सुनहले कुहरे को मानो पानी की काई की तह के समान हटा डाला है।

फाल्गुन के इस आवरण के पीछे जो विश्व भूख प्यास से विकल, विषाद की भार स्वरूप गठरी को देह पर लिए विराट प्रतिमा का रूप धर कर खड़ा है ; आज वह उद्घाटित यवनिका के शिल्प मधुरता के अंतराल से स्पष्ट दृष्टिगोचर हुआ है ।

कब सबेरा हुआ और पूरा दिन बीत कर शाम होने को आई, यह यतीन को ठीक से याद ही नहीं रहा ? वह तो पटल के बुलाने पर जब अन्दर गया तो उसने देखा, कि चुनिया को वही पीड़ा उठी हुई थी। उसके हाथ पांव सुन्न हो गये थे और उसका कोमल शरीर अकड़ गया था। यतीन ने दवा लाने के

लिए तुलसी को भेज कर बोतल में पानी मंगवाया, पर पटल झट से बोल उठी—"कैसे डाक्टर बने हो जी? पांवों में तनिक गर्म गर्म तेल की मालिश भी तो करनी होगी। देखते नहीं, इस बेचारी के तलुवे कैसे वर्फ हो रहे हैं?"

यतीन ने विस्मित नेत्रों से पटल की ओर देखा और उसके हाथ में से गर्म तेल का बर्तन लेकर, रोगिणी के तलुओं में पूरी शक्ति से उस तेल की मालिश शुरू कर दी। इलाज करते हुए रात भी बीतने को आई पर······हरकुमार बाबू कलकत्ते से लौटने पर बार २ चुनिया की अवस्था के विषय में पूछने लगे। यतीन समझ गया, कि इस समय दफ्तर से लौटने पर पटल के बिना हरकुमार बाबू की अवस्था कुछ······इसी लिए बार २ आकर चुनिया की अवस्था को पूछने का यही भेद है।

वह परिहास करता हुआ पटल से बोला—"हरकुमार बाबू छटपटा रहे हैं, तुम अब जाओ।"

उसी समय पटल ने मुंह बनाते हुए गम्भीर मुद्रा में कहा—"दूसरों की दुहाई तो दोगे ही। कौन छटपटा रहा है, सो मैं अच्छी तरह जानती हूं? मेरे चले जाने से ही अब तुम्हें रिहाई मिलेगी न? इधर बात-बात में चेहरे का रंग उषा की तरह लाल हो उठता है। तुम्हारे पेट में भी यह सब छिपा हुआ है, आज से पहले इसे कौन जान सका था?"

यतीन पटल के इस कटाक्ष से तिलमिला उठा। उसने हाथ जोड़ते हुए कहा—"अच्छा, दुहाई तुम्हारी; तुम यहीं रहो। मुझे क्षमा करो। तुम्हारे मुंह पर गाम्भीर्य रहने से ही मेरी जान बचेगी······मैंने समझने में भूल की थी। हरकुमार बाबू शायद इस समय सुख और शान्ति में हैं। ऐसा सुयोग उनके भाग्य में हमेशा नहीं बदा होता है।"

चुनिया ने तनिक आराम पाकर जब आँखें खोली तो पटल ने प्यार भरे स्वर में कहा—"पगली ! तेरी हिरनी जैसी आंखें खुलवाने के लिए तेरा वर बड़ी देर से तलुवे सहला कर तुझे मना रहा है। इसी लिए तूने देर की, अब समझी। छि: ! छि ! उठ उसके पवित्र चरणों की धूलि ले।"

चुनिया ने मानों अज्ञात प्रेरणा से उसी क्षण उठकर छुपी हुई श्रद्धा के साथ यतीन के चरणों की धूलि माथे में लगा ली।

और दूसरे ही दिन से यतीन के साथ नये-नये उपद्रवों का श्री गणेश हो गया। यतीन जब भोजन के लिए बैठता तो चुनिया प्रसन्नचित्त विजन डुला कर मक्खियों को दूर करने में जुट जाती। यतीन व्यस्त भाव से कह उठता—"रहने दो; रहने दो; इस की आवश्यकता नहीं।"

चुनिया ऐसा सुनकर विस्मित नेत्रों से पार्श्व कक्ष की ओर देखती और उसके बाद फिर से पंखा डुलाने लग जाती। यतीन जैसे खीज उठता और पटल को सुनाने के अभिप्राय: से कहता—"पटल ! तुम यदि इसी प्रकार मुझे तंग करोगी तो मैं कदापि भोजन नहीं करूंगा। यह लो, मैं उठता हूं।"

लेकिन एक दिन यतीन के उठने का उपक्रम देख कर चुनिया ने विजन को एक ओर फेंक दिया। यतीन को उसी क्षण उसके चेहरे पर विषाद की रेखायें दृष्टिगोचर हुईं। खिन्नावस्था में उसी क्षण वह फिर बैठ गया। चुनिया कुछ भी नहीं समझती है, लजाना उसे आता नहीं है, विषाद् का भार सम्भालने की उस में क्षमता नही है—सब के समान इन बातों पर यतीन के हृदय ने भी विश्वास करना आरम्भ कर दिया था।

किन्तु आज मानो उसे सहसा दिखाई दिया, कि सारे नियमों, का व्यक्ति क्रम करके अकस्मात कब क्या घटित हो जाता है, इसे

पहले से कभी नहीं जाना जा सकता है ? चुनिया ने फिर विजन नहीं डुलाया। उसे वहीं फेंक कर तत्काल ही दूसरे कमरे में चली गई।

× × ×

यतीन बरामदे में बैठा था। आमों के पत्तों के बीच में छिपी हुई कोयल ने उच्च स्वर में अपना तराना छोड़ दिया था। आम मंजरियों की सुगन्ध से सबेरे की हवा भारी हो गई थी। तभी उसने देखा, चुनिया चाय का प्याला हाथ में लिए समीप आने से मानो कुछ झिझक सी रही है। उसकी भोली और कजरारी आंखों के छोरों में कहाँ का एक सकरुण भय छुप कर आ बैठा है। उसके चाय लेकर आने से यतीन रीझेगा या खीझेगा, इसे जैसे वह ठीक ठीक समझ ही नहीं पा रही थी।

यतीन ने सुस्थिर चित्त से उठकर आगे बढ़ते हुए उसके हाथ से चाय का प्याला ले लिया। भला, इस हिरनी जैसी आंखों वाली मानवी को किसी क्षुद्र कारण वश कहीं वेदना दी जा सकती है ! किन्तु उसने चाय का प्याला हाथ में पकड़ा ही था, कि देखा बरामदे के दूसरे किनारे से सहसा प्रकट होकर पटल ने मौन हास्य द्वारा उँगली दिखाई। भाव बिल्कुल स्पष्ट थे, अब कैसे हारे तुम ?

उसी संध्या को यतीन किसी पत्रिका के पृष्ठ पलट रहा था, कि पुष्पों की सुगन्ध से चकित होकर उसने सिर उठाया। देखा मौलसिरी के पुष्पों का हार हाथ में लिए चुनिया धीरे-धीरे उसके कमरे में प्रविष्ट हो रही है।

यतीन ने मन ही मन में सोचा। यह तो बहुत ज्यादती की जा रही है। पटल के इस निष्ठुर मनोरंजन को अब और अधिक बढ़ावा नहीं देना चाहिए। अतः उसने चुनिया से कहा—"छिः

4409

छिः ! चुन्नी ! तुम्हें बनाकर दीदी अपना मनोरंजन किया करती हैं, सो क्या तुम इतना भी नहीं समझ पाती ?"

बात समाप्त होने से पहले ही चुनिया ने त्रस्त मन और संकुचित भाव से अन्दर की ओर लौट जाने का उपक्रम किया। यतीन ने तब शीघ्रता से उसे बुला कर कहा—"देखूं तनिक ! तुम्हारे इस हार को।"

हाथ आगे करके उसने हार ले लिया। चुनिया के मुख पर से विषाद के बादल फट गये और आनन्द की उज्जवल रेखा सी फूट पड़ी। ठीक उसी समय दूसरे कमरे में से किसी के अट्ट-हास की उच्छ्वसित ध्वनि सुनाई दी ?

दूसरे दिन सवेरे उपद्रव करने के अभिप्रायः से पटल ने यतीन के कमरे में जाकर देखा, कि कमरा सूना पड़ा है। सिर्फ मेज़ पर पड़े कागज पर लिखा है—"भागा जा रहा हूं, यतीन।"

"अरी ओ चुनिया ! तेरा वर तो भाग निकला। उसे तू रोक भी नही पाई।" बाहर जाकर पटल ने चुनिया की वेणी पकड़ कर डुलाते हुए कहा; और फिर घर के काम धन्धों में लग गई।

किन्तु चुनिया को इस छोटी सी बात समझने में कुछ समय लगा। वह पाषाण प्रतिमा के समान खड़ी स्थिर दृष्टि से सामने की ओर देखती रही। इसके उपरान्त धीरे २ यतीन के कमरे में जाकर उसने देखा। कमरा खाली पड़ा है और पिछली शाम को उसका दिया हुआ हार उसी तरह मेज पर रखा है।

उस दिन फाल्गुन मास का सवेरा स्निग्ध एवं सुन्दर दिखाई पड़ रहा था। कम्पित कृष्ण चूड़ा वृक्ष की शाखाओं के भीतर से छन कर और छाया के साथ घुल मिल कर सवेरे की धूप बरामदे में आ रही थी। गिलहरी अपनी मुलायम पूँछ को पीठ की ओर

मोड़े हुए इधर-उधर कुछ पाने की आशा में दौड़ रही थी। पक्षियों का समूह संगठित रूप में अपने मधुर रागों द्वारा भी अपने वक्तव्य को मानो किसी तरह सम्पूर्ण नहीं कर पा रहे थे ; किन्तु महान् विश्व के इस छोटे से कोने में इस पल्लव समूह, काया और धूप के द्वारा बने विश्व के तनिक से खंड के भीतर प्राणों का आनन्द पूर्ण रूप से खिल उठा था।

उसी एक कोने के बीच यह बुद्धिहीन लड़की अपने जीवन का अपने इर्द गिर्द के सम्पूर्ण परिवेश का कोई समीचीन अर्थ नहीं खोज पा रही थी ? उसके लिए सभी कुछ एक पहेली बन गया था। यह क्या हो गया ?.........और ऐसा हुआ क्यों ? फिर उसके बाद यह सवेरा, यह घर, सब कुछ एक साथ ही भला इतने सूने क्यों हो गये ? जिस के अन्तर में समझने की शक्ति इतनी कम दी थी, उसी को अकस्मात् एक दिन हृदय की अतुल वेदना के रहस्य गर्भ के गाढ़ अन्धकार में बिना ज्योति सहसा किसने उतार दिया ? विश्व के इस सहज उच्छ्वसित जीवमय समाज में इन तरु पल्लवों, मृग-खगों के आत्म विस्मृत कलरव के भीतर इस प्रगाढ़ अंधकार से उसे फिर कौन खीच कर बाहर लायेगा ?

पटल ने एकाएक पहुँच कर विस्मित स्वर में कहा–"यह क्या हो रहा है, चुनिया ?"

चुनिया ने सुना मात्र लेकिन उठी नहीं, कुछ बोली भी नहीं जैसी थी वैसी ही रही। पटल ने समीप पहुँच कर स्पर्श किया, तो उच्छ्वसित हो वह फूट २ कर रोने लगी। अश्रु आंखों के बांध को लांघ कर अविरल गति से बहने लगे।

पटल ने आश्चर्य चकित सी अवस्था में कहा –"अरी कल-मुँही, तूने तो बिल्कुल ही सत्यानाश कर लिया। तू क्यों भला मरने गई थी ?"

और फिर चुनिया की इस अवस्था से अवगत करने के अभिप्राय: से पटल ने अपने पति के समीप जाकर कहा—"यह तो, अच्छी मुसीबत बैठे बिठाये गले से बांध ली। आखिर! आप की अक्ल पर भी क्या पत्थर पड़ गये थे, जो मुझे उस समय रोका नहीं।"

हरकुमार बाबू ने पटल की खीझ पूर्ण बात को सुन कर कहा—"तुम्हें रोकने की मेरी कभी आदत ही नहीं रही, फिर रोकने से ही ऐसा कौन सा फल निकल आता?"

"आप कैसे हो जी—"पटल ने तुनक कर कहा—" मैं यदि गलती करूँ तो आप जबरदस्ती नहीं रोक सकते क्या?"

फिर वह उत्तर पाये विना ही, दौड़ती हुई आकर यतीन के कमरे में विरह व्यथा से पीड़ित लड़की को आलिगंनबद्ध करती हुई बोली—"मेरी रानी बहन! तू क्या चाहती है; सो एक बार तो दिल खोल कर मुझ से कह?"

परन्तु चुनिया के पास ऐसी कौन सी भाषा है, जिससे वह अपने हृदय के व्याघात को वाणी के द्वारा सुना सके। वह हृदय की सारी वेदना लिए मानों किसी अनिवर्चनीय वेदना पर जा पड़ी है। यह कैसी वेदना है? विश्व में और भी किसी को क्या ऐसी ही अनुभूति होती है? संसार उसके विषय में क्या सोचता होगा?……किसी भी विषय में चुनिया कुछ भी तो नहीं जानती वह तो केवल अपने इन आंसुओं के द्वारा ही कुछ कह सकती है। मन की पीड़ा को दर्शाने का और तो कोई उपाय उसका जाना हुआ नहीं है।

फिर पटल के ही ओष्ठ हिले—"चुनिया तेरी दीदी बड़ी उछृंखल है, लेकिन स्वप्न में भी नहीं सोचा था। कोई भी कभी उस की बात पर भरोसा नहीं करता, फिर तूने ही ऐसी भयंकर

भूल क्यों की ? चुनिया ! एक बार, बस एक बार अपनी दीदी की ओर मुंह उठा कर तो देख, उसे क्षमा कर दे बहन।"

किन्तु चुनिया का मन इस अकस्मात घटना से बिल्कुल ही विमुख हो चुका था। इसलिए वह किसी भी तरह पटल के मुख की ओर न देख सकी। सारी बातें अच्छी प्रकार से नहीं समझने पर भी उसने एक प्रकार के गूढ़ भाव से पटल पर क्रोध प्रगट किया था। वह उसी अवस्था में अपने हाथों में जोरों से सिर गढ़ाये रही।

पटल तब धीरे-धीरे अपनी लम्बी भुजाओं को हटाकर चुपचाप उठकर चली आई। पाषाण प्रतिमा की तरह खिड़की के किनारे स्तब्ध भाव से आकर खड़ी हो गई। फाल्गुन की धूप से चिकनी चमकीली सुपारी वृक्ष की पल्लव श्रेणी को निहारते-निहारते उसके दोनों नेत्रों से अश्रु बहने लगे।

और अगले दिन चुनिया उसे बिल्कुल दिखाई नहीं दी। पटल उसे बड़े प्यार से अच्छे-अच्छे आभूषणों और वस्त्रों से अलंकृत किया करती थी। वह स्वयं बड़ी बेतरतीबी से रहती, अपनी स्वयं की सजावट के विषय में कोई यत्न नहीं करती थी; लेकिन सजावट की अपनी आकांक्षा को वह चुनिया को सजा कर ही पूरा कर लेती थी। आज बहुत दिनों के संचित वह सारे आभूषण और वस्त्र चुनिया के कमरे में पड़े हुए थे। अपने हाथों के कंगन और चूड़ियाँ तथा नाक की लौंग तक वह उतार कर डाल गई थी। अपनी पटल दीदी के इतने दिनों के लाड़ प्यार को मानो उसने अपनी देह से बिल्कुल ही चिन्ह रहित कर डालने का भरसक प्रयत्न किया है।

हर कुमार बाबू ने पता लगाने के लिए पुलिस में सूचना भेजी। उन दिनों प्लेग की महामारी से भयभीत होकर इतने

आदमी इतनी विभिन्न दिशाओं में जीवन की साध लेकर भाग रहे थे। उन भगोड़ों के समूह में से किसी खास व्यक्ति को ढूँढ निकालना पुलिस के लिए कठिन कार्य बन गया था। दो चार बार गलत व्यक्ति का पता पाने पर हर कुमार बाबू को काफी दुःखी और लज्जित होना पड़ा।

अन्त में उन्होंने चुनिया के मिलने की आशा को त्याग दिया। एक दिन जिसे अज्ञात की गोद में पड़ा पया था, वही आज फिर किसी अज्ञात में ही अंतर्धान हो गई थी?

× × ×

सरकारी प्लेग हस्पताल का डाक्टर यतीन दोपहर का भोजन करके हस्पताल पहुँचा ही था, कि सूचना मिली, जनाने वार्ड में कोई नई रोगिनी आई है। पुलिस उसे रास्ते से उठा कर लाई है।

यतीन देखने गया। लड़की के मुँह का अधिकांश भाग चादर से ढ़का हुआ था। यतीन ने हाथ उठाकर नाड़ी को टटोला। ज्वर अधिक नहीं था, लेकिन कमजोरी अधिक थी। विशेष परीक्षा के अभिप्रायः से जब उसने मुख पर से चादर हटा कर देखा तो चकित रह गया, वह चुनिया थी।

यतीन अब तक पटल से चुनिया के विषय में सब कुछ सुन चुका था। मरीजों की भीड़ से फुरसत पाते ही यतीन के मानस पटल पर, अव्यक्त हृदय तरंग के घूंघट से ढ़की हुई चुनिया की मृगी जैसी दोनों सुन्दर आंखें प्रायः सदा एक प्रकार की अश्रु हीन कातरता को बिखरा दिया करती थीं······

आज रोगी की नेत्रों बड़ी-बड़ी पलकों ने चुनिया के शीर्ण कपोलों पर गहरी छाया रेखा खींच रखी है। देखते ही यतीन के वक्षस्थल के भीतर मानो किसी ने सहसा मेरु जैसा कोई बोझ दबाकर रख दिया है। इस एक लड़की को भगवान ने स्वयं ही

फूल की तरह कोमल रूप में गढ़ कर फिर दुनियां से खींच कर प्लेग जैसी महामारी के स्रोत में कैसे बहा दिया ? आज उसके क्षीण-मृदु प्राण इस रोग से ग्रस्त होकर बिस्तरे पर पड़े हैं। उस की इस छोटी सी आयु ने विपदाओं के इतने बड़े आघात, वेदना का इतना भारी बोझ, आखिर कैसे सह लिया ? यह सब समा कैसे गये ? यतीन ही भला उसके जीवन में तीसरे संकट की तरह कहां से आकर लग गया था ?

रुद्र दीर्घ सांसे यतीन के रुद्ध द्वार पर निरन्तर धक्के देने लगी। किन्तु उसी आघात की वेदना से उसके हृदय के तार में किसी अज्ञात सुख की होड़ सी लग गई ? जो स्नेह विश्व में मिलना कठिन होता है, वही फाल्गुन की किसी दुपहरिया में पूर्ण विकसित बसन्ती मंजरी के समान अयाचित और अकस्मात ही उसके चरणों के निकट खिसक कर जा पड़ी है। जो निश्छल स्नेह इस प्रकार यम के द्वार तक आकर मूर्छित होकर गिर पड़ता है, ऐसे देव योग नैवेद्य का सचा अधिकारी दुनिया में इस तरह अनायास ही भला और कौन हो सकता है ?

यतीन चुनिया के पार्श्व में बैठकर उसे थोड़ा-थोड़ा गर्म दूध पिलाने लगा पीते-पीते काफी देर के बाद चुनिया ने दीर्घ सांस लेकर नेत्र खोले। यतीन के चेहरे की ओर देखकर किसी सुदुर स्वप्न की तरह उसने उसे याद करने का प्रयत्न किया, किन्तु यतीन ने जैसे ही उसके ललाट पर हाथ रख कर हिलाते हुए कहा—"चुनिया।" वैसे ही उसकी बेहोशी की आखिरी खुमारी भी अकस्मात टूट गई। यतीन को उसने पहचान लिया और उसी के साथ उसकी दृष्टि पर किसी सुकुमार मोह का आवरण आ पड़ा। पहले कजरारे बादलों के समागम के साथ आषाढ़ के सुगम्भीर गगन में जैसी गहरी छाया अंकित हो जाती है,

चुनिया की काली आंखों पर वैसी ही सुदुर व्यापी सजल स्निग्धता घनीभूत हो गई ।

स्नेह और करुण मिश्रित स्वर में यतीन ने कहा—"चुन्नी ! यह थोड़ा सा दूध और पी लो ।"

उसी क्षण चुनिया उठ कर बैठ गई, फिर प्याले पर से यतीन के मुख की ओर दृष्टि रखे हुये उसने धीरे-धीरे दूध का शेष भाग भी खत्म कर दिया ।

हस्पताल का विशेष डाक्टर यदि एक ही रोगी के सिरहाने बराबर बैठा रहे, तो काम भी नहीं चले और अच्छा भी प्रतीत नहीं होता । इसलिए दूसरी जगहों भी अपना फर्ज निभाने के लिए यतीन जब उठा तो भय और निराशा से चुनिया की दोनों आँखे व्याकुल हो उठीं । यतीन ने उसका हाथ थाम कर दिलासा देते हुए कहा—"मैं अभी वापस आता हूँ चुन्नी । भय की कोई बात नहीं है ?"

यतीन ने हस्पताल के अधिकारियों को सूचित किया, कि इस नई रोगिनी को प्लेग नहीं है । वह केवल क्षुधा से पीड़ित होने के कारण ही इतनी क्षीण हो गई है । यहाँ प्लेग के अन्य रोगियों के साथ रखने से उस पर प्लेग के कीटाणुओं का आक्रमण हो सकता है ।············इस प्रकार समझा बुझा कर उसे वहाँ से दूसरे स्थान पर ले जाने के लिये यतीन ने विशेष तौर से इजाजत ले ली और अपने आवास गृह में ले आया । फिर इस समाचार से सूचित करने के लिए उसने उसी दिन पटल के पास एक पत्र डाल दिया ।

: ३ :

उस दिन संध्या को घर में रोगिनी और डाक्टर के सिवा कोई नहीं था। सिरहाने के पास रंगीन कागज के आवरण से घिरा हुआ मिट्टी के तेल का एक लैम्प धीमी रोशनी फैला रहा था। कॉनिस पर रखी हुई टाइमपीस निस्तब्ध कमरे में टिक-टिक शब्द का सुन्दर राग अलाप रही थी।

यतीन ने चुनिया के ललाट पर हाथ फेरते हुए पूछा—"अब कैसा लगता है चुन्नी ?"

चुनिया ने इसका कोई उत्तर नहीं दिया ; परन्तु यतीन का वह हाथ अपने क्षीण हाथों से ललाट पर ही दबा रखा।

यतीन ने पुनः पूछा—"अच्छा लगता है।"

चुनिया ने सुन्दर आँखों पर पलकों के तनिक कपाट बन्द करते हुए कहा—"हाँ।"

यतीन ने उंगली से संकेत करके पूछा—"चुन्नी तुम्हारे गले में यह क्या है ?"

चुनिया ने शीघ्रता के साथ साड़ी का पल्लू खींच कर उसे ढकने का यत्न किया। यतीन ने देखा, उसके गले में मौलसिरी के फूलों का सूखा हुआ हार पड़ा है। टाइमपीस के टिक-टिक शब्द के बीच यतीन चुपचाप बैठा सोचने लगा। अपनी हृदय की बात को छिपाने का यह प्रथम प्रयास है। चुनिया मानो पहले एक मृग छौना थी। मालूम नहीं किस घड़ी हृदय भार से आतुर हो यौवन की मादकता का रूप धारण कर बैठी ? किस धूप के उजाले में उसकी ज्वाला की तीक्ष्ण लपटों से चुनिया की समझ पर आच्छादित कुहरा हट गया। उसकी लज्जा, शंका, वेदना, सभी एक दम प्रकाशित हो उठे।

और इन्हीं विचारों में खोये चौकी पर बैठे-ही-बैठे, न जाने कब यतीन की पलकें नींद के बोझ से दब गईं। वह रात्रि के अन्तिम पहर में अचानक द्वार खुलने की आवाज़ से चौंक कर उठ गया। उसकी आँखों ने देखा पटल और हर कुमार बाबू बड़ा सा बेग लिये कमरे में दाखिल हो रहे हैं।

हर कुमार बाबू ने बेग को कमरे में रख कर और यतीन के पास पहुँच कर कहा—"तुम्हारा पत्र पाकर सवेरे ही चल देने का मैंने विचार किया था ; लेकिन जब रात को सो रहा था तो करीब ग्यारह-बारह बजे पटल ने जगा कर कहा—"अजी, सुनते हो, कल सवेरे जाने पर चुनिया को नहीं देख पायेंगे। हमें इसी समय पहुँचना होगा।" उसे मैं किसी प्रकार भी समझा नहीं पाया। तब चटपट एक गाड़ी भाड़े पर लेकर हम लोग उसी क्षण घर से निकले।"

पटल ने तभी अपने पति से कहा—"चलो, यतीन के बिछौने पर आप आराम करें।"

हर कुमार बाबू तनिक सी आपत्ति का मान करते हुए यतीन के कमरे में जाकर लेट गये और फिर उन्हें पलक बन्द करते हुये तनिक भी देर नहीं लगी।

रोगिनी के कमरे में वापस आने पर पटल ने यतीन को एक कोने में बुला कर पूछा—"कुछ आशा है।"

यतीन ने चुनिया की नाड़ी को टटोल कर सिर हिलाते हुए जताया—"नहीं।"

पटल ने चुनिया के निकट अपने को प्रगट किये बिना ही यतीन को फिर ओट में करके पूछा—" यतीन! सच कहना तुम क्या चुनिया को नहीं चाहते?" इस बार यतीन ने पटल के प्रश्न का उत्तर नहीं दिया। वह वहां से हट कर चुनिया के

बिछौने के छोर पर बैठ गया। उसका हाथ अपने हाथों में धीरे से दबाता हुआ बोला—"चुन्नी ! चुन्नी ! चुन्नी !"

चुनिया ने आँखों पर से पलकों का आवरण हटाकर चेहरे पर शांत मधुर हंसी का आभास लाते हुए कहा—"क्या है ?"

यतीन आशातीत स्वर में बोला—"चुन्नी ! अपना यह हार मेरे गले में पहना दो।"

वह निर्निमेष एवं विमूढ़ नेत्रों से केवल यतीन के चेहरे की ओर ताकती रह गई।

यतीन ने फिर कहा--"अपना यह हार क्या मुझे नहीं पहनाओगी चुन्नी ?"

यतीन के निकट इस तनिक से दुलार का सहारा पाकर चुनिया के मन में पहले किए गये अनादर का थोड़ा सा अभिमान जाग उठा, बोली—"इस से क्या होगा ?"

यतीन ने उसके दोनों हाथों को अपने हाथों में समेटते हुए कहा—"मैं तुम्हें प्यार करता हूँ चुन्नी।"

यतीन के इस वाक्य को सुनकर पल भर के लिये चुनिया स्तब्ध रह गई। फिर उसके दोनों नेत्रों से अविरल खारी जल बहने लगा। यतीन बिछौने से उतर कर भूमि पर घुटने टेक कर बैठ गया और चुनिया के हाथों के पास उसने अपना सिर रख दिया। चुन्नी ने अपने गले का हार उतार कर यतीन के गले में पहना दिया।

तब पटल ने चुनिया के पास आकर पुकारा—"चुनिया।"

स्वर को पहचानते ही चुनिया का कांतिहीन मुख चमक उठा, बोली—"क्या है, दीदी ?"

पटल उसके क्षीण हाथों को अपने हाथों में थाम कर बोली—"अब तो तू मुझ से नाराज नहीं है बहिन ।"

चुनिया ने स्निग्ध कोमल दृष्टि पटल के चेहरे पर फेंकते हुए कहा—"मैं नाराज कहाँ थी, दीदी ?"

पटल की ओर से कोई उत्तर नहीं मिला। वह मुड़कर यतीन से बोली—"यतीन ! तुम थोड़ी देर के लिये उधर वाले कमरे में जाकर बैठो।"

यतीन बिना किसी संकोच के चुपचाप चला गया। पटल ने उसके जाते ही बेग खोलकर उस में से सारे आभूषण और वस्त्र निकाले। फिर रोगिनी को बिना हिलाये-डुलाये खूब सावधानी से उसके कमजोर हाथों में कुछ चूड़ियों का पिरोकर दो कंगन भी पहना दिए। इसके बाद आवाज़ दी—"यतीन !"

यतीन आ गया। तब उसे शय्या पर बिठाकर पटल ने उस के हाथों में चुनिया का एक सोने का हार थमा दिया। यतीन ने धीरे-धीरे चुनिया का सिर ऊँचा करके हार उसके गले में पहना दिया।

उषा की लाली में जब सूर्य की प्रथम किरण चुनिया के चेहरे पर पड़ी, तब उसे देखने के लिए वह वहाँ नहीं थी। उसके अम्लान मुख की कांति देख कर ऐसा प्रतीत नहीं होता था, कि वह मरी पड़ी है। यही जान पड़ता था, मानों किसी अतलस्पर्शी सुखद स्वप्न में वह पूर्ण रूप से लीन हो चुकी है ?

जब उसके शव को लेकर चलने का समय आया। तब पटल चुनिया की छाती पर पछाड़ खाकर गिर पड़ी और क्रन्दन स्वर में बोली—"बहिन ! तेरे भाग्य अच्छे थे। जीवन की अपेक्षा तेरा मरण ही अधिक सुखद हुआ।" और चुनिया की शान्त-

स्निग्ध मृत्यु छवि की ओर निहारते हुए यतीन के अन्तर में बारम्बार यही भाव उठने लगा—जिसका यह धन था, उसी ने ही वापस ले लिया; किन्तु उसने मुझे भी उससे वंचित नहीं रखा।

श्मशान घाट पर पहुंच कर शव जल उठा। शोकातुर अवस्था में यतीन ने अज्ञात प्रेम की सीमा का अन्त कर दिया।

—:o:—

विदा

कन्या के पिता के लिए धैर्य धरना थोड़ा बहुत संभव भी था; परन्तु वर के पिता पल भर के लिए भी सब्र करने को तैयार न थे। उन्होंने समझ लिया था, कि कन्या के विवाह की आयु पार हो चुकी है, परन्तु किसी प्रकार कुछ दिन और भी पार हो गये तो इस चर्चा को भद्र या अभद्र किसी भी उपाय से दबा रखने की क्षमता भी समाप्त हो जायगी? कन्या की आयु बड़ी अवैध गति से बढ़ रही थी, इस में किसी को शंका करने की आवश्यकता नहीं, किन्तु इससे भी बड़ी शंका को इस बात की थी कन्या की तुलना में दहेज की रकम अब भी काफी अधिक थी। वर के पिता इसी हेतु इस प्रकार से जल्दी मचा रहे थे।

मैं ठहरा वर अपितु विवाह के विषय में मेरी राय से अवगत होना नितान्त व्यर्थ समझा गया। अपनी कर्त्तव्य परायणता में मैंने भी किसी प्रकार की न्यूनता नहीं आने दी, यानी एफ० ए० पास करके छात्र वृत्ति का अधिकारी बन बैठा। परिणाम यह निकला कि, मेरे सम्बन्ध में श्री प्रजापति के दोनों ही पक्ष, कन्या पक्ष और वर पक्ष, बार-बार बेचैन होने लगे।

हमारी जन्म भूमि में जो पुरुष एक बार विवाह कर लेता है, उसके मन में दूसरी बार विवाह करके रचनात्मक कार्यों में कोई जिज्ञासा या उद्वेग नहीं होता? एक बार नर-मांस का स्वाद कर

लेने पर उस के प्रति बाघ की जो मन की दशा होती है, नारी के विषय में बहुत कुछ वैसी ही हालत एक बार विवाह कर लेने वाले पुरुष के मन की भी होती है।

एक बार नारी का अभाव घटित हुआ, कि फिर सब से पहला प्रयत्न उस अभाव को पूर्ण करने के लिए किया जाता है। ऐसा करते हुए इस बार उसका मन दुविधा में नहीं रहता, कि भावी पत्नी की आयु क्या है और कैसी है उसकी अवस्था ?

मैं देखता हूं, कि सारी दुविधा और दुश्चिंता का ठेका आज कल के लड़कों के ही नाम छूटा है। लड़कों की ओर से बारम्बार विवाह का प्रस्ताव होने पर उनके पिता पत्त के चाँदी के समान श्वेत केश खिजाब की महिमा से बारम्बार श्याम वर्ण को अपना लेते हैं; और उधर बात चीत की तप्ताग्नि से ही लड़कों के श्याम केश, मारे चिन्ता, परेशानी के रात के कुछ घंटों में ही पक उठने का उपक्रम करते हैं।

आप विश्वास कीजिए, मेरे मन में ऐसा कोई विषय उद्वेग का श्रीगणेश नहीं हुआ; अपितु विवाह के प्रस्ताव से मन मयूर बसन्त की दक्षिण पवन की शीतलता में नृत्य कर उठा। कौतूहल से उलझी हुई कल्पना की नई आई हुई कोंपलों के बीच मानो गुपचुप कानाफूसी होने लगी। जिस विद्यार्थी का एडमण्ड वर्क की फ्रांसीसी क्रान्ति की घोर टीकाओं के पांच सात पोथे जवानी घोटने हों, उसके मन में इस जाति के भावों का उठना निरर्थक ही समझा जायेगा। यदि टेक्स्ट बुक कमेटी के द्वारा मेरे इस लेख के पास होने के लेश मात्र भी शंका होती, तो सम्भवतः ऐसा कहने से पूर्व ही सचेत हो जाता।

परन्तु मैं यह क्या ले बैठा ? क्या यह भी ऐसी कोई घटना है ? जिसे लेकर उपन्यास लिखने की योजना बना रहा हूँ।

मेरी योजना इतनी शीघ्र आरम्भ हो जायगी, इसकी मैंने कल्पना भी नहीं की थी। प्रबल आकांक्षा थी, कि वेदना के जो कजरारे मेघ गत कई वर्षों से मन में छा रहे हैं, उन्हें किसी वैसाखी संध्या की तूफानी वर्षा के वेग द्वारा बिल्कुल ही निःप्राण कर दूंगा। पर न तो बच्चों की पाठ्य पुस्तक ही लिखी गई, क्योंकि संस्कृत का व्याकरण मेरे मस्तिष्क से अछूता रह गया था। और न काव्य ही रचा जा सका, क्योंकि मातृ भाषा मेरे जीवन युग में ऐसी फली फूली नहीं थी; जिस के द्वारा मैं अपने हृदय के राज को बाहर प्रगट कर पाता। अतः देख रहा हूँ कि, मेरे अन्तर का सन्यासी आज अपने अट्टहास से अपना हीं, परिहास करने के लिए बैठा है। इसके अतिरिक्त वह करे भी तो क्या? उसके अश्रु शुष्क जो हो गये हैं। जेठ की कड़कड़ाती धूप वस्तुतः जेठ की अश्रु शून्य क्रन्दन ही तो है।

जिसके साथ मेरा विवाह हुआ था, उसका वास्तविक नाम नहीं बताऊंगा, क्यों कि आज ब्रह्मांड के पुरातत्त्व वेताओं में उसके ऐतिहासिक नाम के विषय में विशेष विवाद होने की शंका नहीं है। जिस ताम्र पत्र पर उसका नाम अंकित है, वह मेरा ही हृदय पर है। वह पट और पत्नी का नाम किसी युग में भी विलुप्त होगा, यह सोचना मेरी कल्पना से बाहर है। परन्तु जिस सुनेहरी दुनिया में वह अक्षय बना रहा, वहाँ इतिहास के विद्वानों का आना जाना नहीं होता है। इस पर भी मेरे इस लेख में उसका कुछ न कुछ नाम तो चाहिए ही। अच्छा तो समझ लीजिए शबनम उसका नाम था, क्योंकि शबनम में मुस्कान और रुदन दोनों घुल मिलकर एकाकार हो जाती हैं। और भोर का संदेश प्रभात वेला तक आते ही चुक जाता है।

शबनम मुझ से केवल दो ही वर्ष छोटी थी। मेरे पिता गौरी

दान से विमुख हों, सो यह बात नहीं थी। उन के पिता जी कट्टर समाज विद्रोही थे ? देश में प्रचलित किसी भी धर्म के प्रति उन में श्रद्धा न थी। उन्होंने खूब कस कर आंगल भाषा का अध्ययन किया था। मेरे पिता उग्र भाव से समाज के अनुयायी थे। जिसे अंगीकार करते हुए किंचित मात्र भी अड़चन हो, ऐसी किसी भी वस्तु को हमारे समाज की विशाल ड्योढ़ी या अन्त:पुर में या पिछली राह पर झलक भी देख पाना सम्भव न था। इस का भी कारण यही, कि उन्होंने भी कस कर आंगल भाषा का अध्ययन किया था। पितामह और पिता जी के विभिन्न रूप या मत मानो क्रान्ति की दो विभिन्न मूर्तियां थी। कोई भी सरल स्वभाव का नहीं। फिर भी बड़ी आयु वाली कन्या के साथ मेरा विवाह करना पिता जी ने इस लिए स्वीकार कर लिया, कि उस की इस बड़ी सी आयु की दोनों मुट्ठियों में दहेज की रकम भी बहुत बड़ी थी। शबनम मेरे श्वसुर की एक मात्र कन्या थी। पिता जी को पूर्ण विश्वास था, कि कन्या के पिता का सारा धन भावी दामाद भविष्य के उदर को परिपूर्ण करने वाला है। मेरे श्वसुर को किसी मत मतान्तर का झमेला नहीं था ; पश्चिम की किसी पहाड़ी रियासत के नरेश के यहां किसी उच्च पद पर थे ? शबनम जब गोद में ही थी, तभी उस की मां के प्यार का आंचल उस पर से उठ गया था। इस बात की ओर उस के पिता का ध्यान भी नहीं गया, कि पुत्री प्रति वर्ष एक-एक वर्ष करके बड़ी होती जा रही है। वहां उन के समाज का कोई ऐसा ठेकेदार नहीं था, जो उन के नेत्रों में अंगुली डाल कर इस सच्चाई को उन के हृदय में बिठा देता।

शबनम ने यथा समय उम्र के १६ वर्ष पार किए, किन्तु वे स्वाभाविक १६ वर्ष थे, सामाजिक नही। किसी ने उसे यौवन के प्रति सचेत होने का परामर्श नहीं दिया और न ही उसने

स्वयं उस ओर देखा ? मैंने उन्नीसवें वर्ष में कालिज के तृतीय वर्ष में पग रखा। ठीक तभी मेरा विवाह हो गया। समाज या समाज के ठेकेदार के मत से वह आयु विवाह के उपयुक्त है या नहीं, इस विषय में दोनों पक्ष लड़-भिड़ कर चाहे खून खराबी कर बैठे; किन्तु मैं तो निवेदन के साथ यही कहना चाहता हूँ, कि परीक्षा पास करने के हेतु यह आयु जिस प्रकार ठीक है, विवाह करने के लिए भी उससे किसी प्रकार कम नहीं। विवाह का सूत्रपात एक चित्र के द्वारा हुआ था। उस दिन मैं पढ़ाई-लिखाई में सिर गढ़ाये बैठा था, कि मेरे साथ परिहास का सम्बन्ध रखने वाली किसी आत्मीया ने मेरे सन्मुख टेबुल पर शबनम का चित्र लाकर रख दिया और कुछ पल शान्ति के साथ बिताकर कहा—"लो, अब झूठ मूठ की पढ़ाई को बंद कर के सचमुच की पढ़ाई करो। एक दम जा तोड़ कर परिश्रम में लगाने वाली पढ़ाई।" चित्र किसी अनाड़ी चित्रकार द्वारा खींचा गया था। कन्या के मां नहीं थी, अतः उस दीर्घ श्याम केशों को बांध संवार कर जूड़े में जरी गूंथ कर कलकत्ते की प्रसिद्ध शाह या मालिक कम्पनी की भद्दी, तंग जैकेट पहना कर दूसरे पक्ष के नेत्रों में धूल झोंकने का बरबस प्रयत्न नहीं किया गया था। केवल एक सरल, भरा हुआ चेहरा था, मृगी सी दो आंखें और सीधी सादी एक साड़ी। तब भी पता नहीं क्यों कोई अपूर्व महिमा, सौन्दर्य उसे घेरे हुए था। किसी भी एक चौकोर चौकी पर वह बैठी हुई थी। पीछे आवरण के स्थान पर एक धारीदार शतरंजी झूल रही थी। पास में ही तनिक सी ऊंची तिपाई पर ही फूल दानी में फूलों के सुन्दर गुलदस्ते दीख रहे थे। ईरानी कालीन पर साड़ी की तिरछी किनार से किंचित अनाबद्ध दो कोमल खाली पैर। चित्र की उस रूप सुधा को जैसे ही मेरे मन के जादू का स्पर्श मिला, कि वह मेरे अन्तरतम में जाग उठी। वे

दोनों कजरारी आखें मेरे सारे चिन्तन को चीर कर मुझ पर जाने कैसे अनोखे भाव से आकर स्थिर हो गई; और उस तिरछी किनार के निम्न भाग के दोनों अनावृत पगों ने मेरे अन्तर पद्मासन पर बरबस अपना घर बना लिया।

पत्रे की तिथियाँ आई गई हो गई। विवाह के दो तीन लग्न भी बीत गये; किन्तु मेरे श्वसुर को छुट्टी मिलने का नाम भी नहीं। इधर कुछ मास से मेरे देखते-देखते एक अकाल मेरी इतनी बड़ी अविवाहित उम्र को फिजूल ही उन्नीसवें वर्ष से बीसवे वर्ष की ओर धकेलने का प्रयास कर रहा था। श्वसुर और उनके अधिकारियों पर मुझे खीझ होने लगी।

विवाह का दिन ठीक अकाल की पूर्व लग्न पर ही आकर पड़ा। उस दिन की शहनाई की हर तान आज मुझे स्मरण हो रही है। उस दिन के प्रति मुहूर्त को मैंने चेतनता के साथ स्पर्श किया था। मेरी यह उन्नीस वर्ष की आयु मेरे जीवन में सदैव रहे, मैं उसे कदापि नहीं भुला सकूँगा।

विवाह-मंडप में चहुँ ओर कालाहल सा फैला हुआ था। उसी के बीच कन्या का कोमल हाथ मैंने अपने हाथों में पाया। मुझे स्पष्ट तरीके से याद है, कि यही मेरे जीवन की एक परम आश्चर्य जनक घटना है। मेरे मन ने बारम्बार यही कहा—"इसे मैंने पाया है, हासिल किया है; किन्तु किसे? यह तो दुर्लभ है। यह नारी है, इसके रहस्य का क्या कभी ओर-छोर पाया जा सकता है?"

मेरे श्वसुर का नाम गौरी शंकर था। जिस हिमांचल पर वे उच्च पदाधिकारी थे, उसी हिमाचल के वे मानों गोती थे। उनके गम्भीरता के शिखर पर क्षेत्र में कोई प्रशान्त स्वच्छ हँसी उज्जवल होकर छाई हुई थी। उनके हृदय के स्नेह स्रोत का संधान

जिसने भी एक बार पा लिया, उसने फिर कभी उनसे सम्बन्ध विच्छेद करने की चेष्टा नहीं की।

काम पर लौटने से पूर्व उन्होंने मुझे बुला कर कहा—"बेटा, अपनी बच्ची को तो १७ वर्ष से जानता हूँ और तुम्हें अभी कुछ दिनों से, इस पर भी सौंपा तुम्हारे ही हाथों में है। जो निधि आज तुम्हें मिली है, किसी दिन उसका मूल्य भी परख सको, इससे बढ़कर आशीर्वाद मेरे पास नहीं।"

मेरे माता पिता ने उन्हें बारम्बार आशा भरे शब्दों में कहा—"समधी जी। कुछ चिन्ता न करना। तुम्हारी पुत्री जैसी पिता को छोड़कर आई है, वैसे ही यहाँ माता-पिता दोनों पाये, ऐसा ही समझिये।"

शबनम से विदा होते समय वे हंसकर बोले—"बिटिया, चल दिया। इस बूढ़े पिता को छोड़ तेरा कौन अपना रहा है? आज से यदि इसका कुछ भी गुम हो जाये, तो इसके लिये मुझे जिम्मेवार न ठहराना।" शबनम ने उत्तर दिया—"क्यों नहीं, यदि कभी इतनी सी चीज भी गुम हो गई, तो आप को सारी हानि भरनी पड़ेगी।"

अन्त में, घर रहते हुए जिन विषयों पर बहुधा ही झंझट खड़े हो जाते थे, उनसे उसने पिता को बार-बार सचेत कर दिया। भोजन के विषय में अनियम का उन्हें खासा अभ्यास था। कुछ विशेष प्रकार के अपथ्य भोजन पर उनकी विशेष रुचि थी। पिता को उन सारे प्रलोभनों से यथा सम्भव दूर रखना बेटी का विशेष कर्त्तव्य था। इसी से वह पिता का हाथ पकड़ कर बोली—"बाबू जी! क्या मेरी एक बात रखेंगे?" पिता ने प्रफुल्लित मन से कहा—"मानव इस लिए बचन देता है, कि एक

दिन उसे भंग कर चैन की सांस ले सके। इससे वचन न देना ही श्रेयस्कर है।"

फिर वह कुछ न बोली और पिता के चले जाने पर उसने कमरे के द्वार बन्द कर लिए। इसके बाद की घटना का बखान अन्तर्यामी ही कर सकते हैं। पिता-पुत्री की अश्रुहीन बिदाई का दृश्य पार्श्व के कक्ष की चिर-कौतूहली अंतः पुरिकाओं ने देखा, सुना और आलोचना की—"कैसी अजब बात है भला ? रूखी-सूखी जमीन पर रहते-रहते इन लोगों का हृदय भी सूख कर काठ हो गया है। माया-ममता चिन्ह लेश मात्र भी नहीं रहा। राम ! राम !"

मेरे श्वसुर के मित्र बनमाली बाबू ने ही हमारी बात चीत पक्की की थी। वे हम लोगों के परिवार से भली भांति परिचित थे। वे मेरे श्वसुर से बोले—"बेटी को छोड़कर तो तुम्हारा दुनिया में कोई नहीं है। यहीं इनके पास ही कोई मकान लेकर जिन्दगी के शेष दिन काट डालो।"

उत्तर मिला—"जब दान किया है, तो निःशेष करके ही दे डाला है। फिर लौट लौट कर निहारने से उर की पीड़ा बढ़ेगी। जिस अधिकार को एक बार त्याग चुका, उसे बार-बार बनाये रखने के प्रयत्न से बढ़कर विडम्बना और क्या होगी ?"

अन्त में मुझे एकान्त में ले जाकर किसी अपराधी की तरह सकुचाते हुए बोले—"बिटिया को पुस्तकें पढ़ने का बड़ा चाव है और लोगों को खिलाना पिलाना उसे बहुत अच्छा लगता है। यदि बीच-बीच में तुम्हें रुपये पैसे भेज दिया करूँ, इससे वे नाराज तो नहीं होंगे ?"

सुन कर मुझे तनिक आश्चर्य हुआ। कारण जीवन में कभी किसी भी ओर से धन राशि मिलने पर पिताजी नाराज हुए हों,

उनका ऐसा बिगड़ा मिजाज तो मैंने कभी नहीं देखा ? जो हो, मेरे श्वसुर मानों मुझे घूंस दे रहे हो कुछ ऐसे ही भाव से मेरे हाथों सौ रुपये का एक नोट थाम कर, वे वहाँ से चटपट चल दिये। मैंने देखा, इस बार जेब से रूमाल निकालने की बारी आ ही गई। स्तब्ध होकर मैं विचारों में खो गया। मैंने अनुभव किया, कि ये लोग बिल्कुल ही अन्य जाति के मानव हैं।

अपने सहपाठियों में कितनों ही को तो विवाह करते हुए देखा है। विवाह मंत्रों के उच्चारण के साथ ही साथ स्त्री को एक बारगी कंठ के निम्न भाग में उतार लेते हैं। हजम करने के यंत्र तक पहुँचने पर थोड़ी ही देर बाद वह पदार्थ अपने नाना गुणों एवं अवगुणों को हल कर सकता है और इसके फल स्वरूप हृदय के भीतर चिन्ता बनकर हलचल भी आरम्भ हो सकती है। सो होती रहे ; परन्तु निगलने के रास्ते में इससे कोई रुकावट नहीं पड़ती।

किन्तु मैंने विवाह-मंडप में ही समझ लिया था, कि पाणि-ग्रहण के मंत्र द्वारा जिसे प्राप्त किया जाता है, उस से घर-गृहस्थी तो भली-भाँति चल जाती है। परन्तु उसके हृदय को पूर्णरूपेण पाना पन्द्रह आना बाकी रह जाता है। मुझे सन्देह है, कि विश्व के अधिकांश पुरुष पत्नी को ठीक-ठीक पाते हैं या उनको समझते हैं। वे स्त्री को व्याह कर ले आते हैं, किन्तु उपलब्ध नहीं कर पाते और न कभी उन्हें इस बात का एहसास हो पाता है, कि, उन्होंने पाया कुछ भी नहीं। उनकी पत्नियाँ भी मृत्यु काल तक इस कटु सत्य से अवगत नहीं हो पाती। लेकिन मैंने ऐसा अनुभव किया, कि वह मेरी साधना की निधि है। वह अचल सम्पत्ति नहीं, सम्पदा है, अगाध रत्न-राशि है।

शबनम, नहीं इस नाम से काम नहीं चलेगा। एक तो यह,

कि वह उसका वास्तविक नाम नहीं और न यह उसका यथार्थ परिचय है। वह तो दिवाकर की तप्त रश्मि है, क्षय कालीन उषा की विदा बेला के अश्रुओं का बिन्दु नहीं। नाम को गोपनीय रखकर ही आखिर क्या होगा ? उसका वास्तविक नाम था··· हेमन्ती।

मैंने देखा, सत्रह वर्ष की इस सुन्दरी पर यौवन का पूरा आलोक बिखरा हुआ है। तब भी इस अवस्था की गोद में भी उसे चेतनता नहीं मिली है। हिमाच्छादित शिखर पर भोर का उजाला तो झलक उठा है, किन्तु हिम अभी तक गल नहीं पाया है। कैसी निष्कलंक शुभ्र है वह, कैसी पवित्रता की प्रतिमा, यह मैं ही जानता हूँ ; मेरे मन में बराबर यह शंका बनी रहती थी, कि इतनी बड़ी शिक्षित लड़की का मन पता नहीं, क्योंकर पा सकूंगा ? किन्तु कुछ ही दिवसों के उपरान्त मैंने जान लिया, कि उसके मन की राह और शिक्षा की राह आपस में कहीं कटी ही नहीं है। कब उसके सरल शुभ्र मन पर हल्की सी रंगीनी छा गई, नेत्र अलस तन्द्रा में झूम उठे और देह-मन मानो उत्सुक हो उठे, सो निश्चिन्तता के साथ कह देना मेरे लिए कठिन ही नहीं, अपितु असम्भव है ?

यह तो हुई एक पक्ष की बात ; लेकिन अब दूसरा पक्ष भी है। वह और उसके विषय में पूर्णरूप से कहने का समय अब आ पहुँचा है।

मेरे श्वसुर राज दरबार में उच्च पदाधिकारी थे। इसलिये उनकी कितनी धन-राशि बैंक के खातों में है, इस सम्बन्ध में जन-श्रुति ने बहुत तरह के अनुमान बिठाये थे। इन में से किसी भी अनुमान की संख्या लाख के आंकड़ों से नीचे नहीं पड़ती थी। फलस्वरूप एक ओर पिता के प्रति सम्मान बढ़ता गया,

तो दूसरी ओर इकलौती बेटी की ओर स्नेह। हमारी घर-गृहस्थी का काम धंधा और तौर तरीका जानने के लिये हेम खूब उत्सुकता दिखला रही थीं। किंतु मां ने उसे अगाध स्नेह दिखाने के अभिप्राय: से किसी काम में हाथ नहीं लगाने दिया? यहाँ तक, कि माय के से हेम के साथ जो पहाड़िन मेहरी आई थी, उसे उन्होंने वास्तव में अपने कक्ष में नहीं घुसने दिया, फिर भी उस की जाति-पाँति के बारे में किसी प्रकार का अपवाद नहीं किया? वे डरती थीं, कि विशेष छान-बीन करने पर कहीं कोई अरुचिकर सत्य न सुनना पड़े।

दिन इसी तरह कट जाते; लेकिन एक दिन पिता जी का मुंह घोर गंभीर दिखाई दिया। बात यह थी, कि मेरे श्वसुर ने मेरे विवाह में १५ सहस्र रुपये नकद और पाँच सहस्र के आभूषण दिये थे। इधर पिता जी को किसी कृपा पात्र दलाल से पता चला, कि यह धनराशि कर्ज लेकर जुटायी गयी थी; जिसका व्याज भी कुछ मामूली न था और लाख रुपये की अफवाह तो बिल्कुल उड़ाई हुई थी।

वास्तव में मेरे विवाह के पूर्व श्वसुर की सम्पत्ति के परिमाण के विषय में पिता जी ने भी उनसे कोई आलोचना नहीं की थी। तब भी न जाने किस तर्क पद्धति से आज उन्होंने यह बिल्कुल पक्का निश्चय कर लिया था, कि उनके समधी ने जान बूझकर यह धोखा उनके साथ किया है। इसके अलावा पिता जी की यह भी धारणा थी, कि मेरे श्वसुर राजा के मुख्य मंत्री या उसी समान किसी उच्च पद के अधिकारी हैं। पीछे पता चला, कि वे वहाँ के शिक्षा विभाग के अध्यक्ष हैं। पिता जी ने टीका की—अर्थात् विद्यालय के मुख्याध्यापक, विश्व में जितने भी भद्रपद हैं, उनमें सब से ऊँचा है। पिता जी ने बड़ी-बड़ी आशायें कर रखी थीं, कि आज नहीं तो कल, श्वसुर के अवकाश

प्राप्त करने पर राज मंत्री के पद पर वे स्वयं ही प्रतिष्ठित होंगे।

इन्हीं दिनों के कार्तिक मास में रामलीला के उपलक्ष में हमारा जन्म भूमि का सारा परिवार कलकत्ते वाली हवेली में आ जुटा। वधू को देखते ही उनमें एक छोर से दूसरे छोर तक काना-फूसी की लहर दौड़ गई। क्रमशः अस्फुट हुई। दूर के नाते से सम्बन्धित नानी ने कहा—"आग लगे मेरे भाग्य को, नई बहू ने तो उम्र में मुझे भी हरा दिया।"

सुनकर नानी की समवयस्का बोल उठी—"अरे हमें न हरायेगी, तो हमारा बच्चा विदेश से बहू लाने ही क्यों जायेगा?"

माँ ने उग्रता के साथ उत्तर दिया—"मैया रे! यह क्या बात हो रही है? बहू ने अभी ग्यारह पार नहीं किये, यही अगले फाल्गुन में बारह में पाँव धरेगी। पछहुआ देस में दाल-भात खा-खा कर बड़ी हुई है बेचारी, सो देह तनिक अधिक सम्भल गई है।"

वृद्धाओं ने शान्त अविश्वास के साथ उत्तर दिया—"सो बिटिया रानी, इतनी कमजोर तो हमारी निगाह अभी नहीं हुई है। हमारे ख्याल में तो लड़की वालों ने जरूर उमर कुछ दबा कर बताई है।"

मां ने कहा—"हम लोगों ने तो जन्म-पत्री देखी है।"

"बात सच है, किन्तु जन्म-पत्री से ही तो प्रमाणित होता है, कि बहू की उम्र सत्रह है।"

वृद्धाओं ने कहा—"सो जन्म पत्री में क्या धोखा-धड़ी नहीं चलती?" इस बात पर घोर वाद-विवाद छिड़ गया। यहाँ तक,

कि संघर्ष की नौबत आ गई। उसी क्षण वहाँ हेम आ पहुँची। उन दोनों वृद्धाओं में से एक ने उसी से पूछा—"बहू रानी! तुम्हारी उमर क्या है, बताओ तो भला ?" मां ने आँखों से संकेत किया ; परन्तु हेम उसका मतलब नहीं समझी, बोली— "सत्रह।" मां तिलमिला उठी। उसने उसी अवस्था में कहा— "तुम्हें मालूम नहीं है।" हेम विरोध का प्रदर्शन करती हुई बोली—"मुझे ठीक मालूम है। मेरी उम्र सत्रह है।"

वृद्धाओं ने गुपचुप एक दूसरे के हाथ दबाये। बहू की मूर्खता पर खीझ कर मां बोली—"तुम्हें तो सब मालूम है। लेकिन तुम्हारे बाबू जी ने हम से खुद कहा है, कि तुम्हारी उमर ग्यारह है।"

सुन कर हेम चौंक उठी, बोली—"बाबू जी ने ! कभी नहीं।"

मां ने कहा—"तुमने तो चकित कर दिया है। समधी जी स्वयं मेरे सामने कह गये थे और बिटिया कहती है, कभी नहीं।" यह कहकर मां ने आँख से फिर संकेत किया। अब की बार हेम संकेत समझ गई : लेकिन उसने कंठ को और भी मजबूत करके कहा—"बाबू जी ! ऐसी बात कभी नहीं कह सकते।"

मां ने स्वर को धीमा करके कहा—'तू' क्या मुझे झूठा ठहराना चाहती है ?" हेम ने फिर वही दुहराया—"बाबू जी तो कभी झूठ नहीं बोलते।"

इसके बाद मां जितना भी अपवाद फैलाने लगी उतना ही कालिमा फैल कर सब को एकाकार लीपने पोतने लगी। इतना ही नहीं मां ने नाराज होकर पिता जी के सन्मुख अपनी बहू की मूढ़ता और जिद्दीपन की शिकायत रखी। पिता जी ने उसी क्षण हेम को बुलाकर धमकाते हुए कहा इतनी बड़ी अविवाहित कन्या

की अवस्था सत्रह वर्ष की थी, यह कन्या कोई बड़प्पन की बात है, जो उसका ढिंढोरा पिटती फिरोगी ? हमारे घर में यह सब नहीं चलेगा, कहे देता हूँ।';

हाय रे भाग्य, बहू रानी के प्रति पिता जी का यह मधु मिश्रित पंचम स्वर इस प्रकार उस्ताद बाजखां के घोर षडज तक कैसे उतर आया ?

हेम ने व्यथित होकर पूछा—"यदि कोई उम्र जानना चाहे, तो क्या उत्तर दूँ ?"

पिता जी बोले—"झूठ बोलने की आवश्यकता नहीं। कह दिया करो, मुझे नहीं पता, मेरी सास मां जानती हैं।" इसके बाद झूठ किस तरह बताया जाता है, इसका सारा उपदेश सुनने के बाद, हेम कुछ इस तरह चुप हो गई, कि पिता जी को यह समझना बाकी न रहा, कि उनका सारा सदुपदेश बिल्कुल चिकने घड़े पर पानी की तरह पड़ा।

हेम की दुर्गति पर दुःख क्या प्रगट करूँ, उसके समक्ष तो मेरा मस्तक ही नत हो गया मैंने देखा, शारदीया प्रभात के आकाश की तरह उसके नेत्रों की वह सरल उदार दृष्टि मानो किसी संसय की छाया से म्लान हो उठी ? भीत मृगी की तरह मानों उसने मेरे मुख की ओर देखा और सोचा, मैं कदाचित इन्हें नहीं पहचानता।

उस दिन मैं एक सुन्दर जिल्द वाली अंग्रेजी कविताओं की एक पुस्तक क्रय करके उस के लिए ले आया था। उसने पुस्तक को अपने सुन्दर हाथों से थामा, फिर धीमे से गोद में रख कर एक बार भी खोल कर नहीं देखा। मैंने उसके दांये हाथ को अपने हाथों में लेकर कहा—"हेम मुझ पर नाराज न होना, में तो तुम्हारे सत्य के बन्धन में बँधा हुआ हूं।"

सुनकर वह कुछ न बोली, केवल तनिक मुस्करा दी। सृष्टि कर्त्ता ने वैसी ही मुस्कान जिसे दी है, उसे और भी कुछ कहने की आवश्यकता ही कहाँ ?

इधर पिता जी की आर्थिक तरक्की के कुछ दिनों बाद से सृष्टिकर्ता के उस अनुग्रह को चिर स्थायी कर रखने के स्वार्थ से हमारे यहाँ नये उत्साह से पूजा पाठ चल रहा था। आज तक कभी भी पूजा-अर्चना में बहू की कभी भी बुलाहट नहीं हुई। आज अचानक नई वधू को पूजा का थाल सजाने का आदेश मिला। वह बोली—"मां, मुझे समझा दो, कैसे क्या करना होगा ?"

प्रश्न कुछ ऐसा न था, जिसे सुन कर किसी के सिर पर आसमान टूट पड़ता; यह तो सब लोग-भली प्रकार जानते थे कि मातृ हीना हेमा प्रवास में ही इतनी बड़ी हुई है। तब भी इस उद्देश्य का आशय तो केवल हेम को लज्जित करना ही था। सो सभी ने अपने गाल पर हथेली रख कर कहा—"हाय मैया, यह भला कैसी बात है ? आखिर किस नास्तिक के घर की बेटी है ? बहू, घर की लक्ष्मी अब इस गृहस्थी से बिदा होने ही वाली है ? देरी मत समझना" और इसी प्रसंग में हेम के पिता को लक्ष्य करके न जाने कितनी अकथनीय बातें की गईं ?

कटू आलोचना की हवा जब से चलनी आरम्भ हुई थी, तब से हेम आज तक बराबर चुप रह कर सब सहन करती आ रही थी। कभी पल भर के लिए भी उसने किसी के सामने अश्रु न बहाये ? परन्तु आज तो उसकी बड़ी बड़ी आँखों को प्लावित करती हुई अश्रुओं की झाड़ी लग गई। वह खड़ी होकर बोल उठी—"आपको मालूम है, वहाँ मेरे बाबू जी को सब लोग ऋषि कहते हैं।"

ऋषि मानते हैं, सुन कर उपस्थित लोगों ने पेट भर कर दिल के गुब्बारे निकाले। इस घटना के उपरान्त जब कभी उसके पिता का उल्लेख करना होता, तो सब लोग यही कहते, "तुम्हारे ऋषि बाबू जी।" इस बहू की सब से मर्म का स्थान कौन सा है? इसे हमारे यहाँ सब ने अच्छी प्रकार समझ लिया था। वास्तव में मेरे श्वसुर ब्राह्मन थे और न ईसाई, और बहुत करके नास्तिक भी नहीं पूजा अर्चना की बात कभी उनके ध्यान में ही नहीं आई। बेटी को उन्होंने शिक्षिता बनाने का प्रयत्न अवश्य किया था। कितने ही उपदेश भी दिए थे; किन्तु सृष्टि कर्ता के सम्बन्ध में कोई उपदेश नहीं दिया? इसी बारे में पूछने पर उन्होंने इतना ही कहा—"जिस विषय को मैं स्वयं नहीं जानता, उसे सिखलाना केवल कपट ही होगा।"

ससुराल में हेम की एक सचमुच की भक्ति न थी, मेरी छोटी भगिनी नारायणी, वह अपनी भाभी को बहुत स्नेह करती थी उसके लिए उस बेचारी को काफी प्रताड़ना सहनी पड़ती थी। घर में हेम के अपमान की कहानी मुझे उसी से सुनने को मिलती थी। हेम के मुँह से कभी किसी दिन भी सुनने को नहीं मिला? लज्जा का आवरण उसके अपने लिए नहीं था, अपितु मेरे लिए ही था। बाबू जी के पास से वह जो पाती वह मुझे पढ़ने के लिए दे देती। ये पत्र छोटे होने पर भी रस से भरपूर होते थे। वह स्वयं भी उनको मैं जब कभी पत्र लिखती तो मुझे अवश्य दिखा देती। बाबू जी के साथ उसका जो नाता था, उसमें अपने साथ मुझे भी बराबर का भागी बनाये बिना उसका दाम्पत्य पूर्ण जो नहीं हो पाता। उसके इन पत्रों में ससुराल के सम्बन्ध में किसी प्रकार की शिकायत का आभास मात्र भी नहीं? यदि होता, भावी आशंका की सम्भावना थी,

कारण नारायणी से मैंने सुन लिया था, कि जांच के लिए बीच में उसके पत्र गोपनीय रीति से खोल लिए जाते हैं। इन पत्रों में उसका कोई भी दोष सिद्ध न होने से ऊपर वालों का मन शान्त हो, सो बात नहीं; बल्कि आशा टूटने का दुःख ही सम्भवतः उन्हें ज्यादा टीसा करता था। इसलिए उन्होंने चिढ़ कर कहना शुरू कर दिया, कि आखिर इतनी जल्दी २ पत्तर डालने की ही भला कौन सी जरूरत है? मानों बाबा ही सब कुछ हैं। हम लोग क्या कोई नहीं?" और इसी प्रकार की अनेक अरुचिकर बातों का तांता शुरू हो गया। मैंने क्षुब्ध होकर हेम से कहा—"तुम बाबू जी को पत्र लिखती हो, वह किसी और को न देकर मुझे ही दे दिया करो, कालिज जाते समय राह में छोड़ दिया करूँगा।"

चकित होकर हेम ने कहा—"क्यों?"

मैंने संकोच वश कोई उत्तर नहीं दिया। किन्तु हवेली में सब ने कहना आरम्भ कर दिया, कि अब लड़के के सिर चढ़ना शुरू हुआ है। बी० ए० की उपाधि अब ताक पर धरी रहेगी। आखिर उस बेचारे का भला दोष ही क्या है?

सो तो है ही! दोष किसी का है तो वह बेचारी हेम का। उसकी उम्र सत्रह वर्ष की है, यह उसका पहला दोष है। मैं उसे स्नेह करता हूँ, यह भी उसका दूसरा दोष है। सृष्टि कर्त्ता का विधान ही ऐसा है, यह भी हेम का तीसरा दोष है। इसीलिए तो मेरे हृदय के अणु २ में समस्त आकाश इस तरह की बांसुरी की तान साधे हुए है।

बी० ए० की उपाधि को निर्विकार भाव से मैं चूल्हे में फूंक सकता था; किन्तु हेम के कल्याण के लिए मैंने प्रण किया, कि मैं अवश्य उत्तीर्ण होऊँगा और अच्छे अंकों से। दो कारणों से मुझे अपने प्रण को पूरा कर पाने का भरोसा था। एक तो हेम

के अगाध स्नेह में ऐसा आकाश व्यापी विस्तार था, कि वह मन को संकीर्ण, आसक्ति में फंसा कर नहीं रहती। उस स्नेह के आस-पास कोई खूब ही स्वास्थ्य-वर्द्धक वायु बहा करती थी। दूसरे परीक्षा की पुस्तकें कुछ ऐसी थीं ; जिन्हें हेम के साथ २ पढ़ना असम्भव न था। सो मैं कमर कस कर परीक्षा पास करने के उद्योग में जुट गया।

एक दिन रविवार की दुपहरिया में बाहर के कमरे में बैठा हुआ मैं मार्टिन की आचारशास्त्रावली पुस्तक की खास खास पंक्तिओं के मध्य पथ को चीरते हुए लाल पेन्सिल का हल चलाये जा रहा था, कि अचानक सामने की ओर मेरी दृष्टि जा पहुंची कमरे के सामने आंगन के उत्तर की ओर अन्त:पुर को जाने के लिए एक जीना था इसी बंद जीने में बाहर की तरफ सींकचेदार खिड़कियाँ थी। मैंने देखा, कि हेम उन्हीं में किसी एक खिड़की के पास पश्चिम की ओर निहारती हुई चुप-चाप बैठी है। उस ओर मल्लिकों की बगिया है जिस में कचनार का पेड़ गुलाबी पुष्पों के भार का सम्भाले खड़ा हुआ है। इस भाषाहीन गहरी वेदना के रूप को आज तक इतने सुस्पष्ट भाव से मैंने नहीं देखा था। खास कुछ भी नहीं, अपने कमरे में से मैं किंचित पीछे की ओर दीवार के सहारे टिके उस के सिर के भंगी भाव भली भाँति देख पा रहा था मेरा अपना जीवन इस तरह लबा-भर गया था, कि किसी प्रकार की भी कोई शून्यता मैंने आज तक देखी ही नहीं थी। आज अकस्मात् अपने बिल्कुल ही पार्श्व में मैंने किसी बहुत निराशा का घना गढ़ा देखा था। इस तल हीन गर्त को मैं क्यों कर, काहे से पूरा कर सकूँगा ? मुझे तो जीवन में कुछ भी छोड़ना नहीं पड़ा। न घर, न द्वार, और न आज तक किसी प्रकार का अभ्यास ही। लेकिन, हेम को तो सभी कुछ छोड़ कर और दूर ठेल कर मेरे पास आना पड़ा इस

का परिणाम कितना अधिक है, सो मैंने भली भाँति सोचा भी नहीं ? हमारे घर में अपमान के कांटों की सेज पर वह बैठी है। उसको हमने आपस में विभक्त कर लिया है। उस वेदना के आसव को हम दोनों ने एक साथ ही पिया था। इसलिए हम दोनों एक दूसरे के निकट थे। परन्तु हिमाचल में पली हुई यह गिरि नन्दिनी सत्रह वर्ष की लम्बी अवधि तक अपने वाह्य और अन्तः जीवन में कैसी विशाल मुक्ति के मध्य पली थी ? कैसे कठोर सत्य और उदार आलोक में उसकी छवि एवं प्रकृति इस प्रकार स्वच्छ और सबल हो चुकी है ? उस सारे वैभव से आज हैम का नाता किस प्रकार निष्ठुरता के साथ तोड़ दिया गया है, इस बात का, आज से पूर्व मैंने कभी अनुभव ही नहीं किया था ? कारण उस स्थान पर हैम के साथ मेरा आसन बराबरी का न था। वह तो अन्दर ही अन्दर पल-पल तिल २ कर के मृत प्रायः सी होती जा रही थी। उसे मैं सब दे सकता था; किन्तु मुक्ति नहीं, मुक्ति मेरे अपने अंतर में ही कहाँ है ? इसी हेतु कलकत्ते की इस सकरी गली में खिड़की के सींकचों के भीतर से मूक आकाश के साथ उसके मूक मन की बात-चीत हुआ करती।

किसी दिन रात को उठ कर मैंने देखा, वह बिछौने पर नहीं है हाथों पर सिर को थाम कर तारों से भरपूर आकाश की ओर मुँह उठाये वह छत पर लेटी है।

मार्टिन का चरित्रता का बखान वहाँ पड़ा रह गया। मैं सोचने लगा, कि मेरा कर्त्तव्य क्या है ? बाल्यकाल से ही पिता जी के साथ मेरे सम्बन्ध में मेरे संकोच की सीमा न थी। समक्ष होकर कभी उनसे किसी वस्तु के लिए प्रार्थना करने की न तो मेरी आदत ही थी और न साहस ही ; किन्तु आज मुझ से न रहा गया। लाज और संकोच को ताक पर धर कर मैं उनसे कह

ही बैठा—"उसकी तबीयत आजकल कुछ अच्छी नहीं है, सो एक बार बाबूजी के यहाँ भेज देना ही अच्छा होगा।"

सुनकर पिता जी चकित रह गये। उनके मन में इस बात का तनिक भी संदेह न रहा, कि हेम ने ही मुझ में इस अभूतपूर्व साहस का बीजारोपण किया है और अच्छी प्रकार से सीखा पढ़ा कर यहाँ भेजा है। वे तत्काल ही उठकर अन्तःपुर में गये और हेम से पूछा—"बहू! तुम्हें क्या नई बीमारी है, बताना तो भला?"

हेम ने सिर झुका कर उत्तर दिया—"कहाँ, बीमारी-बीमारी तो कुछ भी नहीं है।"

पिता ने सोचा, उत्तर तेज दिखाने के लिए है। किन्तु हेम का शरीर जो प्रतिदिन सूखती जा रही थी, सो नित्य प्रति देखते रहने के कारण हम लोग समझ नहीं पाते थे।

एक दिन बनमाली बाबू ने उसे देखा तो, चौंक पड़े। वे बोले—"एं, यह क्या? तेरा मुख ऐसा कैसा हो गया है हेम? बीमार तो नहीं हो?"

हेम ने कहा—"नहीं।"

परन्तु इस घटना के दस दिन बाद ही अकस्मात मेरे श्वसुर आ पहुँचे। अवश्य ही बनमाली बाबू ने हेम की तबीयत की बात लिखी होगी।

विवाह के उपरान्त पिता से बिदा लेते हुए हेम ने अपने अश्रु रोक लिए थे; किन्तु आज जैसे ही उन्होंने उसकी ठोड़ी छूकर मुंह ऊपर को उठाया तो अश्रुओं का बांध टूट गया। उस की भीगी पलकों ने सब कुछ बता दिया। वह बाबू जी को मुख से आधी बात भी न कह सकी। वे इतना भी न पूछ पाये, कि तू

कैसी है ? बेटी के क्षीण गात, म्लान मुख और भीगी पलकों को देखते ही उनकी छाती टूक-टूक हो गई।

हेम बाबू जी का हाथ पकड़ कर उन्हें शयन कक्ष में ले गई। कितनी बातें तो पूछने की हैं, बाबू जी की तबीयत भी तो ठीक नहीं दिखाई देती।

हेम बाबू जी के साथ साथ के जाने के लिए उद्यत हो गई। बनमाली बाबू ने भी समधी जी से इस बात का संकेत किया। लेकिन अन्तत: बात पिता जी की ही रही और उसके आगे हेम की आकांक्षा कुचल दी गई।

बाप-बेटी को बिदा करने की बेला फिर एक बार आ पहुंची। बेटी ने नीरव और शुष्क मुस्कान को पीले मुख पर डालते हुए कहा—"बाबू जी ! यदि फिर कभी आपने मेरे लिए पागलों की भांति बेतहाशा दौड़ते हुए इस हवेली में कदम रखा तो मैं दरवाजा बन्द कर लूंगी।"

बाबू जी ने उसी मुद्रा में उत्तर दिया—"बेटी ! भाग्य में फिर आना लिखा, तो साथ में सेंध लगाने के औजार भी लेता आऊँगा।"

इसके बाद हेम के मुख की वह मुस्कान फिर कभी देखने को नहीं मिली।

फिर क्या हुआ सो मुझसे कहा नहीं जायेगा।

सुनता हूं, मां फिर उपयुक्त बधू की खोज में है। सम्भव है किसी दिन मां के अनुरोध की अवहेलना मुझसे न हो सके। यही मुमकिन है; क्योंकि............खैर छोड़िये इस भेद भरी बातों को।

—:o:—

काबुल वाला

मेरी पांच वर्ष की छोटी लड़की मिनी से पल भर भी बात किए बिना नहीं रहा जाता। दुनिया में आने के बाद भाषा सीखने में उसने सिर्फ एक ही वर्ष लगाया होगा। उसके बाद से जितनी देर तक सो नहीं पाती है, उस समय का एक पल भी वह चुप्पी में नहीं खोती। उसकी माता बहुधा डांट-फटकार कर उस की चलती हुई जबान बन्द कर देती है, किन्तु मुझ से ऐसा नहीं होता, मिनी का मौन मुझे ऐसा अस्वाभाविक सा प्रतीत होता है, कि मुझ से वह अधिक देर तक सहा नहीं जाता, और यही कारण है, कि मेरे साथ उसके भावों का आदान प्रदान कुछ अधिक उत्साह के साथ होता रहता है।

सवेरे मैंने अपने उपन्यास के सत्रहवें अध्याय में हाथ लगाया ही था, कि इतने में मिनी ने आकर कहना आरम्भ कर दिया—"बाबू जी! रामदयाल दरवान कला 'काक' को कौआ कहता था। वह कुछ जानता ही नहीं, न बाबूजी?"

विश्व की भाषाओं की विभिन्नता के विषय में मेरे कुछ बताने से पहले ही उसने दूसरा प्रसंग छेड़ दिया—"बाबू जी! भोला कहता था, आकाश मुँह से पानी फेंकता है, इसी से बरसा होती है। अच्छा बाबू जी, भोला झूठ-मूठ कहता है न,? खाली बक-बक किया करता है, रात-दिन बकता रहता है।"

इस विषय में मेरी राय की तनिक भी राह न देख करके,

चट से धीमे स्वर में एक जटिल प्रश्न कर बैठी, "बाबू जी, माँ तुम्हारी कौन लगती है?"

मन-ही-मन में मैंने कहा साली; और फिर बोला—"मिनी, तू जा, भोला के साथ खेल, मुझे अभी काम है, अच्छा।"

तब उसने मेरी मेज के पार्श्व में पैरों के पास बैठकर अपने दोनों घुटने और हाथों को हिला-हिलाकर बड़ी शीघ्रता से मुँह चला कर 'अटकन बटकन दही चटाके' कहना आरम्भ कर दिया जब कि मेरे उपन्यास के अध्याय में प्रतापसिंह उस समय कंचनमाला को लेकर रात्रि के प्रगाढ़ अन्धकार में बन्दीगृह के ऊँचे झरोखे से नीचे कल-कल करती हुई सरिता में कूद रहे थे।

मेरा घर सड़क के किनारे पर था, सहसा मिनी अपने अटकन बटन को छोड़कर कमरे की खिड़की के पास दौड़ गई, और जोर-जोर चिल्लाने लगी, "काबुल वाला, ओ, काबुल वाला।"

मैले-कुचले ढीले कपड़े पहने, सिर पर कुल्ला रखे, उस पर साफा बाँधे, कंधे पर सूखे फलों की मैली झोली लटकाये, हाथ में चमन के अंगूरों की कुछ पिटारियाँ लिए, एक लम्बा-तड़ंगा सा काबुली मन्द चाल से सड़क पर आ रहा था। उसे देखकर मेरी छोटी बेटी के हृदय में कैसे भाव उदय हुए, यह बताना असम्भव है। उसने जोरों से पुकारना शुरू किया। मैंने सोचा, अभी झोली कंधे पर डाले, सरपर एक मुसीबत आ खड़ी होगी, और मेरा सत्रहवाँ अध्याय आज अधूरा ही रह जायेगा।

किन्तु मिनी के चिल्लाने पर ज्यों ही काबुली ने हँसते हुए उसकी ओर मुँह फेरा और घर की ओर बढ़ने लगा; त्यों ही मिनी भय खाकर भीतर भाग गई। फिर उसका पता ही नहीं लगा, कि कहां छिप गई? उसके छोटे से मन में यह अन्ध विश्-

पास बैठ गया था, कि उस मैली कुचेली झोली के अन्दर ढूँढ़ने पर उस जैसी और भी जीती जागती बच्ची निकल सकती है।

इधर काबुली ने आ कर मुस्कराते हुए मुझे हाथ उठाकर अभिवादन किया और खड़ा हो गया मैंने सोचा, वास्तव में प्रताप सिंह और कंचन माला की दशा अत्यन्त संकटापन्न है, फिर भी घर में बुलाकर इस से कुछ न खरीदना अच्छा न होगा।

कुछ सौदा खरीदा गया। उस के बाद में उस से इधर-उधर की बातें करने लगा। रहमत, रूस, अंग्रेज, सीमान्त रक्षा के बारे में गप-शप होने लगी।

अन्त में, उठ कर जाते हुए उसने अपनी मिली-जुली भाषा में पूछा—"बाबू जी, आपकी बच्ची कहां गई?"

मैंने मिनी के मन से व्यर्थ का भय दूर करने के अभिप्राय: से उसे भीतर से बुलवा लिया। वह मुझसे बिल्कुल लग कर काबुली के मुख और झोली की ओर सन्देहात्मक दृष्टि डालती हुई खड़ी रही। काबुली ने झोली में से किसमिस और खुबानी निकाल कर देनी चाहीं, पर उसने न लीं; और दूगुने सन्देह के साथ मेरे घुटनों से लिपट गई। उसका पहला परिचय इस प्रकार हुआ।

इस घटना के कुछ दिन बाद, एक दिन सबेरे मैं किसी आवश्यक कार्य वश बाहर जा रहा था? देखूं तो मेरी बिटिया दरवाजे के पास बेंच पर बैठी हुई काबुली से हँस-हँसकर बातें कर रही है और काबुली उसके पैरों के समीप बैठा-बैठा मुस्कराता हुआ, उन्हें ध्यान से सुन रहा है और बीच-बीच में अपनी राय मिली जुली भाषा में व्यक्त करता जाता है। मिनी को अपने पांच वर्ष के जीवन में, बाबू जी के सिवा, ऐसा धैर्य वाला श्रोता

शायद ही कभी मिला हो। देखा तो, उसका फिराक का अग्र भाग बादाम-किसमिस से भरा हुआ है। मैंने काबुली से कहा—"इसे यह सब क्यों दे दिया? अब कभी मत देना?" कह कर कुर्ते की जेब में से एक अठन्नी निकाल कर उसे दी। उसने बिना किसी हिचक के अठन्नी लेकर अपनी झोली में रख ली?

कुछ देर बाद, घर लौट कर देखता हूँ तो उस अठन्नी ने बड़ा भारी उपद्रव खड़ा कर दिया है।

मिनी की मां एक सफेद चमकीली गोलाकार पदार्थ हाथ में लिए, डांट-डपट कर मिनी से पूछ रही—"तूने यह अठन्नी पाई कहां से, बता?"

मिनी ने कहा—"काबुल वाले ने दी है।"

"काबुल वाले से तूने अठन्नी ली कैसे, बता?"

मिनी ने रोने का उपक्रम करते हुए कहा—"मैंने मांगी नहीं थी, उसने आप ही दी है।"

मैंने जाकर मिनी की उस अकस्मात मुसीबत से रक्षा की, और उसे बाहर ले आया।

मालूम हुआ कि काबुली के साथ मिनी की यह दूसरी ही भेंट थी, सो बात नहीं। इस दौरान में वह रोज आता रहा है और पिस्ता-बादाम की रिश्वत दे देकर मिनी के छोटे से हृदय पर बहुत अधिक अधिकार कर लिया है।

देखा, कि इस नई मित्रता में बंधी हुई बातें और हंसी ही प्रचलित है। जैसे, मेरी बिटिया, रहमत को देखते ही, हँसती हुई पूछती—"काबुल वाला, ओ काबुल वाला, तुम्हारी झोली के भीतर क्या है? काबुली जिसका नाम रहमत था, एक अनावश्यक चन्द्र-बिन्दु जोड़ कर मुस्कराता हुआ उत्तर देता—"हाँ

थी।" उसके परिहास का रहस्य क्या है, यह तो नहीं कहा जा सकता ; फिर भी इन नये मित्रों को इससे तनिक विशेष खेल सा प्रतीत होता है, और जाड़े के प्रभात में एक सयाने और एक बच्ची की सरल हंसी सुनकर मुझे भी बड़ा अच्छा लगता।

उन दोनों मित्रों में और भी एक आध बात प्रचलित थी। रहमत मिनी से कहता—"तुम ससुराल कभी नहीं जाना, अच्छा, ?"

हमारे देश की लड़कियाँ जन्म से ही 'ससुराल' शब्द से परिचित रहती हैं ; किन्तु हम लोग तनिक कुछ नई रोशनी के होने के कारण तनिक सी बच्ची को ससुराल के विषय में विशेष ज्ञानी नहीं बना सके थे, अतः रहमत का अनुरोध वह स्पष्ट रूप से नहीं समझ पाती थी ; इस पर भी बिना किसी बात का उत्तर दिये बिना चुप रहना उसके स्वभाव के बिल्कुल ही विरुद्ध था। उल्टे वह रहमत से ही पूछती—"तुम ससुराल जाओगे ?"

रहमत काल्पनिक श्वसुर के लिए अपना जबरदस्त घूंसा तान कर कहता—"हम ससुर को मारेगा।"

सुन कर मिनी 'ससुर' नामक किसी अनजाने जीव की दुरावस्था की कल्पना कर के खूब हँसती।

देखते-देखते जाड़े की सुहावनी ऋतु आ गई। पूर्व युग में इसी समय राजा लोग दिग्विजय के लिये कूंच करते थे। मैं कलकत्ता छोड़ कर कभी कहीं नहीं गया, शायद इसीलिये मेरा मन ब्रह्माण्ड में घूमा करता है। यानी, मैं अपने घर में ही चिर प्रवासी हूँ, बाहरी ब्रह्माण्ड के लिये मेरा मन सर्वदा आतुर रहता है। किसी विदेश का नाम आगे आते ही मेरा मन वहीं के उड़ान लगाने लगता है। इसी प्रकार किसी विदेशी को देखते ही, तत्काल मेरा मन सरिता-पर्वत-बीहड़ वन के बीच

में एक कुटीर का दृश्य देखने लगता है और एक उल्लासपूर्ण स्वतंत्र जीवन-यात्रा की बात कल्पना में जाग उठती है।

इधर देखो तो मैं ऐसी प्रकृति का प्राणी हूँ, जिस का अपना घर छोड़ कर बाहर निकलने में सिर कटता है। यही कारण है, कि सवेरे के समय अपने छोटे से कमरे में मेज के सामने बैठ कर उस काबुली से गप-शप लड़ा कर बहुत कुछ भ्रमण का काम निकाल लिया करता हूँ। मेरे सामने काबुल का पूरा चित्र खिंच जाता। दोनों ओर ऊबड़-खाबड़, लाल-लाल ऊँचे दुर्गम पर्वत है और रेगिस्तानी मार्ग, उन पर लदे हुए ऊँटों की कतार जा रही है। ऊँचे-ऊँचे साफे बांधे हुए सौदागर और यात्री कुछ ऊँट की सवारी पर हैं तो कुछ पैदल ही जा रहे हैं। किन्हीं के हाथों में बरछा है, तो कोई बाबा आदम के जमाने की पुरानी बन्दूक थामे हुए है। बादलों की भयानक गर्जन के स्वर में काबुली लोग अपनी मिली-जुली भाषा में अपने देश की बातें कर रहे हैं।

मिनी की मां बड़ी बहमी तबीयत की है। राह में किसी प्रकार का शोर-गुल हुआ नहीं, कि उसने समझ लिया, कि संसार भर के सारे मस्त शराबी, हमारे ही घर की ओर दौड़े आ रहे हैं? उसके विचारों में यह दुनिया इस छोर से उस छोर तक चोर-डकैत, मस्त शराबी, सांप, बाघ, रोगों, मलेरिया, तिल चट्टे और अंग्रेजों से भरी पड़ी है। इतने दिन हुए इस दुनिया में रहते हुए भी, उसके मन का यह रोग दूर नहीं हुआ।

रहमत काबुली की ओर से भी वह पूरी तरह निश्चित नहीं थी। उस पर विशेष नजर रखने के लिये मुझ से वह बार-बार अनुरोध करती रहती। जब मैं उसके शक को परिहास के आवरण से ढकना चाहता तो वह मुझसे एक साथ कई प्रश्न पूछ

बैठती—"क्या कभी किसी का लड़का नहीं चुराया गया ? क्या काबुल में गुलाम नहीं बिकते ? क्या एक लम्बे-तगड़े काबुली के लिये एक छोटे बच्चे का उठा ले जाना असम्भव है ?" इत्यादि ।

मुझे मानना पड़ता, कि यह बात नितान्त असम्भव हो सो बात नहीं, पर भरोसे के काबिल नहीं । भरोसा करने की शक्ति सब में समान नहीं होती, अतः मिनी की मां के मन में भय ही रह गया ; लेकिन केवल इसीलिये बिना किसी दोष के रहमत को अपने घर में आने से मना न कर सका ।

हर वर्ष रहमत माघ मास में लगभग अपने देश लौट जाता है । इस समय वह अपने व्यापारियों से रुपया-पैसा वसूल करने में बड़ा तल्लीन रहता है । उसे घर-घर, दुकान-दुकान घूमना पड़ता है ; लेकिन फिर भी मिनी से उसको भेंट एक-बार अवश्य हो जाती है । देखने में तो ऐसा प्रतीत होता है, कि दोनों के मध्य किसी षड्यंत्र का श्री गणेश हो रहा हो । जिस दिन वह सवेरे नहीं आ पाता, उस दिन देखूं तो वह संध्या को हाजिर है । अन्धेरे में घर के एक कोने में उस ढीले-ढाले जामा-पाजामा पहने, झोली वाले लम्बे-तगड़े आदमी को देख कर सचमुच ही मन में अचानक भय सा पैदा हो जाता है ।

लेकिन, जब देखता हूँ, कि मिनी 'ओ काबुल वाला' पुकारती हुई हँसती-हँसती दौड़ी आती है और दो भिन्न-भिन्न आयु के असम मित्रों में वही पुराना हास-परिहास चलने लगता है, तब मेरा सारा हृदय खुशी से नाच उठता है ।

एक दिन सवेरे मैं अपने छोटे कमरे में बैठा हुआ नई पुस्तक के प्रुफ देख रहा था । जाड़ा, बिदा होने से पूर्व, आज दो तीन दिन से खूब जोरों से अपना प्रकोप दिखा रहा है । जिधर देखो, उधर इस जाड़े की ही चर्चा है । ऐसे जाड़े-पाले में खिड़की

में से सवेरे की धूप मेज के नीचे मेरे पैरों पर आ पड़ी। उसकी गर्मी मुझे अच्छी प्रतीत होने लगी। लगभग आठ बजे का समय होगा। सिर से मफलर लपेटे ऊषा चरण सवेरे की सैर करके घर की ओर लौट रहे थे। ठीक इसी समय राह में एक बड़े जोर का शोर सुनाई दिया।

देखूं तो, अपने उस रहमत को दो सिपाही बांधे लिये जा रहे हैं। उनके पीछे बहुत से तमाशाही बच्चों का झुंड चला आ रहा है। रहमत के ढीले-ढाले कुरते पर खून के दाग हैं, और एक सिपाही के हाथ में खून से लथपथ छुरा। मैंने द्वार से बाहर निकल कर सिपाही को रोक लिया, पूछा—"क्या बात है?"

कुछ सिपाही से और कुछ रहमत से सुना, कि हमारे एक पड़ौसी ने रहमत से रामपुरी चद्दर खरीदी थी। उसके कुछ रुपये उसकी ओर बाकी थे, जिन्हें देने से उसने साफ इन्कार कर दिया। बस, इसी पर दोनों में बात बढ़ गई, और रहमत ने निकाल कर छुरा घोंप दिया।

रहमत उस झूठे बेईमान आदमी के लिए भिन्न २ प्रकार के अपशब्द सुना रहा था। इतने में 'काबुल वाला। ओ, काबुल वाला!' पुकारती हुई मिनी घर से निकल आई।

रहमत का चेहरा क्षण भर में कौतुक हास्य से चमक उठा। उसके कंधे पर आज झोली नहीं थी। अतः झोली के बारे में दोनों मित्रों की अभ्यस्त आलोचना न चल सकी। मिनी ने आते के साथ ही उस से पूछा—"तुम ससुराल जाओगे।"

रहमत ने प्रफुल्लित मन से कहा—"हाँ वहीं तो जा रहा हूँ।"

रहमत ताड़ गया, कि उसका यह जवाब मिनी के चेहरे पर

हँसी न ला सकेगा, और तब उसने हाथ दिखा कर कहा—"ससुर को मारता, पर क्या करूँ, हाथ बंधे हुए हैं।"

छुरा चलाने के जुर्म में रहमत को कई वर्ष का कारावास मिला।

रहमत का ध्यान धीरे २ मन से बिल्कुल उतर गया हम लोग अब अपने घर में बैठ कर सदा के अभ्यस्त होने के कारण, नित्य के काम धन्धों में उलझे हुए दिन विता रहे थे। तभी एक स्वाधीन पर्वतों पर घूमने वाला इन्सान कारागार की प्राचीरों के अन्दर कैसे वर्ष पर वर्ष काट रहा होगा, यह बात हमारे मन में कभी उठी ही नहीं।

और चंचल मिनी का आचरण तो और भी लज्जा प्रद था। यह बात उसके पिता को भी माननी पड़ेगी। उसने सहज ही अपने पुराने मित्र को भूल कर पहले तो नवी सईस के साथ मित्रता जोड़ी; फिर क्रमशः जैसे २ उसकी वयोवृद्धि होने लगी वैसे २ सखा के बदले एक के बाद एक उसकी सखियाँ जुटने लगीं। और तो क्या, अब वह अपने बाबू जी के लिखने के कमरे में भी दिखाई नहीं देती। मेरा तो एक तरह से उसके साथ नाता ही टूट गया है।

कितने ही वर्ष बीत गये? वर्षों बाद आज फिर एक शरद् ऋतु आई है। मिनी की सगाई की बात पक्की हो गई है। पूजा की छुट्टियों में उसका विवाह हो जायेगा। कैलास वासिनी के साथ २ अब की बार हमारे घर की आनन्दमयी मिनी भी मां बाप के घर में अंधेरा कर के ससुराल चली जायेगी।

सवेरे दिवाकर बड़ी सज-धज के साथ निकले। वर्षा के बाद शरद् ऋतु की यह नई धवल धूप सोने में सुहागे का काम दे रही है। कलकत्ता की सकरी गलियों से परस्पर सटे हुए, पुराने

ईंट भर गन्दे घरों के ऊपर भी इस धुप की आभा ने एक प्रकार का अनोखा सौन्दर्य बखेर दिया है।

हमारे घर पर आज दिवाकर के आगमन से पूर्व ही शहनाई बज रही है। मुझे ऐसा प्रतीत हो रहा है, कि जैसे यह मेरे हृदय की धड़कनों में से रो रो कर बज रही हो। उसकी करुण भैरवी रागिनी मानों मेरी विच्छेद पीड़ा को जाड़े की धूप के साथ सारे ब्रह्मांड में फैला रही है। मेरी मिनी का आज विवाह है।

सवेरे से घर बवन्डर बना हुआ है। हर समय आने जाने वालों का तांता बंधा हुआ है। आंगन में बासों का मंडप बनाया जा रहा है हरेक कमरे और बरामदे झाड़-फन्नूस लटकाये जा रहे हैं, और उनकी टक-टक की आवाज मेरे कमरे में आ रही है। 'चलो रे' जल्दी करो' इधर आओ' की तो कोई गिनती ही नहीं है।

मैं अपने लिखने पढ़ने के कमरे में बैठा हुआ हिसाब लिख रहा था। इतने में रहमत आया और अभिवादन करके खड़ा हो गया।

पहले तो मैं उसे पहचान न सका। उसके पास न तो झोली थी और न पहले जैसे लम्बे २ बाल और न चेहरे पर पहले जैसी दिव्य ज्योति ही थी। अन्त में उसकी मुस्कान देख कर पहचान सका, कि वह रहमत है।

मैंने पूछा—"क्यों रहमत, कब आये?"

उसने कहा—"कल शाम को जेल से छूटा हूं।"

सुनते ही उसके शब्द मेरे कानों में खट से बज उठे। किसी खूनी को मैंने कभी आंखों से नहीं देखा था, उसे देख कर मेरा सारा मन एकाएक सिकुड़ सा गया? मेरी यही इच्छा होने लगी,

कि आज के इस शुभ दिन में यह इंसान यहाँ से टल जाये तो अच्छा हो।

मैंने उससे कहा—"आज हमारे घर में कुछ आवश्यक काम है, सो आज मैं उसमें लगा हुआ हूं। आज तुम जाओ, फिर आना।"

मेरी बात सुन कर वह उसी क्षण जाने को तैयार हो गया। पर द्वार के पास जा कर कुछ इधर-उधर देख कर बोला—"क्या, बच्ची को तनिक नहीं देख सकता ?"

शायद उसे यही विश्वास था, कि मिनी अब तक वैसी ही बच्ची बनी है। उसने सोचा हो, कि मिनी अब भी पहले की तरह 'काबुल वाला, ओ काबुल वाला' पुकारती हुई दौड़ी चली आयेगी। उन दोनों के पहले हास परिहास में किसी प्रकार की रुकावट न होगी ? यहाँ तक, कि पहले की मित्रता को याद करके वह एक पेटी अंगूर और एक कागज के दोने में थोड़ी सी किसमिस और बादाम, शायद अपने देश के किसी आदमी से मांग-तांग कर लेता आया था ? उसकी पहले की मैली कुचेली झोली आज उसके पास न थी।

मैंने कहा—"आज घर में बहुत काम है। सो किसी से भेंट न हो सकेगी ?"

मेरा उत्तर सुन कर वह कुछ उदास सा हो गया। उसी मुद्रा में उसने एक बार मेरे मुख की ओर स्थिर दृष्टि से देखा। फिर अभिवादन करके दरवाजे के बाहर किकल गया।

मेरे हृदय में न जाने कैसी एक वेदना सी उठी। मैं सोच ही रहा था कि उसे बुलाऊँ, इतने में देखा तो, वह स्वयं ही आ रहा है।

वह पास आ कर बोला—"ये अंगूर और कुछ किसमिस बादाम बच्ची के लिए लाया था, उस को दे दीजियेगा।"

मैंने उस के हाथ से सामान लेकर पैसे देने चाहे, लेकिन उस ने मेरे हाथ को थामते हुए कहा—"आप की बहुत मेहरबानी है बाबू साहब, हमेशा याद रहेगी ; पैसा रहने दीजिये।" तनिक रुक कर फिर बोला—"बाबू साहब ! आप की जैसी मेरी भी देस में एक बच्ची है। मैं उस की याद कर-कर, आप की बच्ची के लिए थोड़ी सी मेवा हाथ में ले आया करता हूँ। मैं यह सौदा बेचने नहीं आता।"

कहते हुए उस ने अपने ढीले-ढाले कुरते के अन्दर हाथ डाल कर छाती के पास से एक मैला-कुचैला मुड़ा हुआ कागज का टुकड़ा निकाला ; और बड़े जतन से उस की चारों तह खोल कर, दोनों हाथों से उसे फैला कर मेरी मेज पर रख दिया।

देखा कि कागज के उस टुकड़े पर एक नन्हे से हाथ के छोटे से पंजे की छाप है। फोटू नहीं, तेल चित्र नहीं, हाथ में थोड़ी सी कालिख लगा कर, कागज के ऊपर उसी का निशान ले लिया गया है। अपनी बेटी की इस स्मृति पत्र को छाती से लगा कर रहमत हर वर्ष कलकत्ता की गली-कूचों में सौदा बेचने के लिए आता है ; और तब वह कालिख चित्र मानो उस की बच्ची के हाथ का कोमल स्पर्श, उस के बिछड़े-हुए विशाल वक्षः स्थल में अमृत उड़ेलता रहता है।

देख कर मेरी आँखें भर आईं और फिर मैं इस बात को बिल्कुल ही भूल गया, कि वह एक मामूली काबुली मेवा वाला है, मैं एक उच्च वंश का रईस हूँ। तब मुझे ऐसा लगने लगा, कि जो वह है, वही मैं हूँ। वह भी एक बाप है और मैं भी। उसकी पर्वत वासिनी छोटी बच्ची की निशानी मेरी ही

मिनी की याद दिलाती है। मैंने तत्काल ही मिनी को बाहर बुलवाया ; हालांकि इस पर अन्दर घर में आपत्ति की गई, पर मैंने उस पर कुछ भी ध्यान नहीं दिया। विवाह के वस्त्रों और अलंकारों में लिपटी हुई बेचारी मिनी मारे लज्जा के सिकुड़ी हुई सी मेरे पास आकर खड़ी हो गई।

उसे उस अवस्था में देख कर रहमत काबुली पहले तो सकपका गया। उस से पहले जैसी बात-चीत न करते बना। बाद में हँसते हुए बोला—"लल्ली ! सास के घर जा रही है क्या ?"

मिनी अब सास का अर्थ समझने लगी थी, अतः अब उस से पहले की तरह उत्तर देते न बना। रहमत की बात सुन कर मारे लज्जा के उस के कपोल लाल-सुर्ख हो उठे। उस ने मुँह को फेर लिया। मुझे उस दिन की याद आई, जब कि रहमत के साथ मिनी का प्रथम परिचय हुआ था। मन में एक पीड़ा की लहर दौड़ गई।

मिनी के चले जाने के बाद, एक गहरी सांस लेकर रहमत फर्श पर बैठ गया। शायद उस की समझ में यह बात एकाएक साफ हो गई, कि उसकी बेटी भी इतने दिनों में बड़ी हो गई होगी ; और उस के साथ भी उसे अब फिर से नई जान-पहचान करनी पड़ेगी। सम्भवतः वह उसे पहली जैसी नहीं पायेगा। इन आठ वर्षों में उस का क्या हुआ होगा, कौन जाने ? सवेरे के समय शरद् की स्निग्ध सूर्य किरणों में शहनाई बजने लगी और रहमत कलकत्ता की एक गली के भीतर बैठा हुआ अफगानिस्तान के मेरु-पर्वत का दृश्य देखने लगा।

मैंने एक नोट निकाल कर उस के हाथ में दिया ; और कहा, "रहमत, तुम देस चले जाओ, अपनी लड़की के पास। तुम दोनों के मिलन-सुख से मेरी मिनी सुख पायेगी।"

रहमत को रुपये देने के बाद विवाह के हिसाब में से मुझे उत्सव-समारोह के दो एक अंग छांट कर काट देने पड़े। जैसी मन में थी, वैसी रोशनी नहीं करा सका, अंग्रेजी बाजा भी नहीं आया, घर में औरतें बड़ी बिगड़ने लगीं, सब कुछ हुआ ; फिर भी मेरा विचार है, कि आज एक अपूर्व ज्योत्सना से हमारा शुभ समारोह उज्ज्वल हो उठा।

—:०:—

अनाथ

गाँव की किसी एक अभागिनी के अत्याचारी पति के तिरस्कृत कर्मों की पूरी व्याख्या करने के बाद पड़ोसिन तारामती ने अपनी राय संक्षेप में प्रगट करते हुए कहा—"आग लगे ऐसे पति के मुंह में।"

सुन कर जयगोपाल बाबू की पत्नी शशिकला को बहुत ही बुरा लगा और ठेस भी पहुंची। उसने जबान से तो कुछ नहीं कहा, पर अन्दर ही अन्दर सोचने लगी कि पति जाति के मुख में सिगरेट सिगार की आग के सिवा और किसी तरह की आग लगाना या कल्पना करना कम-से-कम नारी जाति के लिए कभी किसी भी अवस्था में शोभा नहीं देता?

शशिकला को गुम सुम बैठा देख कर कठोर हृदया तारामती का उत्साह दूना हो गया, वह बोली—"ऐसे खसम से तो जन्म जन्म की रांड भली।" और चटपट वहाँ से उठ कर चल दी उसके जाते बैठक समाप्त हो गई।

शशिकला गम्भीर हो गई। वह सोचने लगी, पति की ओर से किसी दोष की वह कल्पना भी नहीं कर सकती, जिससे उन के प्रति ऐसा कठोर भाव जागृत हो जाये। विचारते-विचारते उस के कोमल हृदय का सारा का सारा प्रीति फल अपने प्रवासी पति की ओर उच्छ्वसित होकर दौड़ने लगा। पलंग पर जहाँ, उसके पति शयन किया करते थे, उस स्थान पर दोनों बांह फैला कर वह

औंधी पड़ रही, और बारम्बार तकिये को छाती से लगा कर चूमने लगी, तकिये में पति के सिर के तेल की सुगन्ध को वह महसूस करने लगी और फिर द्वार बन्द करके बक्स में से पति का एक बहुत पुराना चित्र और स्मृति पत्र निकाल कर बैठ गई। उस दिन की निस्तब्ध दोपहरी, उस की इसी प्रकार कमरे में एकान्त, चिन्ता, पुरानी स्मृति और व्यथा के आंसुओं में बीत गई।

शशिकला और जयगोपाल बाबू का दाम्पत्य जीवन कोई नया हो सो बात नहीं है। बचपन में शादी हुई थी। और इस दौरान में कई बाल बच्चे भी हो चुके थे। दोनों ने बहुत दिनों तक एक साथ रह कर साधारण रूप में दिन काटे। किसी भी ओर से इन दोनों के अपरिमित स्नेह को देखने कभी कोई नहीं आया ? लगभग सोलह वर्ष की एक लम्बी अवधि बिताने के बाद उसके पति को महज काम धाम ढूढने के लिए अचानक परदेश जाना पड़ा। और इस विच्छेद ने शशि के मन में एक प्रकार का प्रेम का तूफान खड़ा कर दिया। विरह बंधन में जितना खिंचाव होने लगा, कोमल हृदय की फांस उतनी ही कड़ी होने लगी। इस ढीली अवस्था में जब उसका अस्तित्व भी मालूम नहीं पड़ा, तब उस की पीड़ा अन्दर से टीसे मारने लगी। इसी से, इतने दिन बाद, इतनी आयु में बच्चों की मां बन कर शशिकला आज बसन्त की दुपहरिया में निर्जन घर में विरह शय्या पर पड़ी पड़ी नव वधू का सा सुख स्वप्न देखने लगी। जो स्नेह अज्ञात रूप से जीवन के आगे से बहा चला गया है, सहसा आज उसी के भीतर से जाग कर मन ही मन बहाव से विपरीत तैर कर पीछे की ओर बहुत दूर पहुंचना चाहती है। जहाँ स्वर्ण पुरी में कुंज बनों की भरमार है, और स्नेह की उन्माद अवस्था

किन्तु, उस अतीत के स्वर्णाभि सुख में पहुँचने का अब उपाय क्या है ? फिर स्थान कहाँ है ? सोचने लगी, अब की बार जो वह पति को पास पायेगी तब जीवन की इन शेष घड़ियों को और बसन्त की आभा को निष्फल नहीं होने देगी। कितने ही दिवस, कितनी ही बार उसने छोटी मोटी बातों पर बाद विवाद करके, इतना ही नहीं, उन बातों पर कलह कर-कर के पति को परेशान कर डाला है। आज अतृप्त मन ने भी एकान्त इच्छा से संकल्प किया, कि भविष्य में कदापि संघर्ष न करेगी, कभी भी उनकी इच्छा के विरुद्ध नहीं चलेगी, उनकी आज्ञा का पूरी तरह पालेगी, सब काम उन की तबीयत के अनुसार किया करेगी, स्नेह युक्त विनम्र हृदय से अपने पति का बुरा भला व्यवहार सब चुपचाप सह लिया करेगी; कारण पति सर्वस्व है, पति प्रियतम है, पति देवता है।

बहुत दिनों तक शशिकला अपने माता-पिता की एक मात्र लाडली बेटी रही है। उन दिनों जयगोपाल बाबू वास्तव में मामूली नौकरी किया करता था, फिर भी भविष्य के लिए उसे किसी प्रकार की चिन्ता न थी। गाँव में जा कर पूर्ण वैभव के साथ रहने के लिए उस के श्वसुर के पास पर्याप्त मात्रा में चल-अचल सम्पति थी।

इसी बीच, बिल्कुल ही असमय में शशिकला के वृद्ध पिता काली प्रसन्न के यहाँ पुत्र ने जन्म लिया। सत्य कहने में क्या है ? भाई के इस जन्म से शशिकला को बहुत दुःख हुआ, और जयगोपाल बाबू भी इस नन्हे साले को पाकर विशेष प्रसन्न नहीं हुआ।

अधिक आयु में बच्चा होने के कारण उस पर माता-पिता के लाड़-प्यार का कोई ठिकाना न रहा। उस नवजात छोटे

दूध-पीते निद्रातुर साले ने अपनी अज्ञानता में न जाने कैसे अपने कोमल हाथों की छोटी-छोटी मुट्ठियों में जयगोपाल की सारी आशायें पीस कर जब चकनाचूर कर दी तब वह आसाम के किसी छोटे बगीचे में नौकरी करने के लिए चल दिया?

सबने कहा सुना कि, पास में ही कहीं छोटा-मोटा काम-धन्धा खोज करके यहीं रहो तो अच्छा हो। किन्तु, चाहे गुस्से के कारण से हो या गैरों की नौकरी करने से शीघ्र ही अमीर बन ने की धुन से हो, उस ने किसी की बात पर भी ध्यान नहीं दिया। शशि को बच्चों के साथ उस के मायके में छोड़ कर वह आसाम चला गया। विवाह के उपरान्त इस दम्पति में यह पहला विच्छेद था।

पति के चले जाने से, शशि को दुध मुहें भाई पर बड़ा क्रोध आया। जो मन की पीड़ा को स्पष्ट रूप में कह नहीं सकता, उसी को क्रोध अधिक आता है। छोटा सा नवजात शिशु मां के स्तनों को चूसता और आंखें मीच कर निश्चिन्ता से सोता, और उस की बड़ी बहिन अपने बच्चों के लिए गर्म दूध, ठंडा भात स्कूल जाने देर इत्यादि अनेक कारणों से रात दिन रूठ कर मुँह फुलाये रहती और सारे परिवार को परेशान करती।

थोड़े दिन बाद ही बच्चे की मां का स्वर्गवास हो गया। मरते समय मां अपने गोद के बच्चे को लड़की के हाथ सौंप गई।

अब तो बहुत ही शीघ्र मातृहीन शिशु ने अपनी कठोर हृदया दीदी का हृदय जीत लिया। हा-हा, ही-ही करता हुआ वह शिशु जब अपनी दीदी के ऊपर जा पड़ता और अपने बिना दांत के छोटे से मुख में उस का मुंह, नाक, कान सब कुछ लेकर जाना चाहता, अपनी छोटी सी मुट्ठी में उस का जूड़ा पकड़ कर

जब खींचता, और किसी कीमत पर भी हाथों में आई वस्तु को छोड़ने के लिए तैयार न होता, दिवाकर के उदय होने से पहले ही उठ कर जब वह गिरता-पड़ता हुआ अपनी दीदी को कोमल स्पर्श से पुलकित कर के, किलकारियाँ मार-मार कर शोर मचाना आरम्भ कर देता, और जब वह क्रमशः दी···दी···दीदी पुकार पुकार कर बारम्बार उस का ध्यान बंटाने लगा, और जब उसने काम-काज और फुरसत के समय, उस पर उपद्रव करने आरम्भ कर दिये, तब शशि से स्थिर नहीं रहा गया। उस ने उस छोटे से स्वतंत्र प्रेमी अत्याचारी के आगे पूरे तौर पर आत्म समर्पण कर दिया। बच्चे की मां नहीं थी, इसी से शायद उस पर उस की संरक्षकता का अधिक भार आ पड़ा।

: २ :

शिशु का नाम हुआ नील मणि। जब वह दो वर्ष का हुआ तब उस के पिता असाध्य रोगी हो गये। बहुत शीघ्र चले आने के लिये जयगोपाल बाबू को लिखा गया। जयगोपाल बाबू जब मुश्किल से उस सूचना को पाकर ससुराल पहुँचा, तब श्वसुर काली प्रसन्न मौत की घड़ियाँ गिन रहे थे।

मरने से पूर्व कालीप्रसन्न ने अपने एक मात्र नाबालिग पुत्र नील मणि का सारा भार दामाद जयगोपाल बाबू पर छोड़ दिया; और अपनी अचल सम्पत्ति का एक चौथाई भाग अपनी बेटी शशिकला के नाम कर दिया।

इसलिये, चल-अचल सम्पत्ति की सुरक्षा के लिये जयगोपाल बाबू को आसाम की नौकरी छोड़कर ससुराल चले आना पड़ा।

बहुत दिनों के उपरान्त पति-पत्नी में मिलन हुआ। किसी जड़ पदार्थ के टूट जाने पर, उन के जोड़ों को मिलाकर किसी प्रकार उसे जोड़ा जा सकता है, किन्तु दो मानवी हृदयों को, जहाँ से फट जाते हैं, विरह की लम्बी अवधि बीत जाने पर फिर वहाँ ठीक पहले जैसा जोड़ नहीं मिलता? कारण, हृदय सजीव पदार्थ है, क्षण में उस की परिणति होती है और क्षण में ही परिवर्तन।

इस नये मिलन पर शशि के मन में अब की बार नये ही भावों का श्री गणेश हुआ। मानों अपने पति से उस का पुनः विवाह हुआ हो। पहले दाम्पत्य में पुरानी आदतों के कारण जो एक जड़ता सी आ गई थी, विरह के आकर्षण से वह एकदम टूट गई, और अपने पति को मानो उसने पहले की अपेक्षा कहीं अधिक पूर्णता के साथ पा लिया। मन-ही-मन में उस ने संकल्प किया, कि चाहे कैसे ही दिन बीतें, वह पति के प्रति उद्दीप्त स्नेह की उज्ज्वलता को तनिक भी म्लान न होने देगी।

किन्तु, इस नये मिलन में जयगोपाल बाबू के मन की दशा कुछ और ही हो गई। इस से पूर्व जब दोनों अविच्छेद रूप से एक साथ रहा करते थे, जब पत्नी के साथ उस के पूरे स्वार्थ और विभिन्न कार्यों में एकता का सम्बन्ध था, जब पत्नी उसके जीवन का एक नित्य सत्य हो रही थी, और जब वह उसे पृथक करके कुछ करना चाहता था तो दैनिक चर्या की राह में चलते चलते अवश्य उस का पाँव अकस्मात गहरे गर्त में पड़ जाता। उदाहरणतः कहा जा सकता है कि परदेश जाकर पहले-पहल वह भारी मुसीबत का शिकार हो गया। वहाँ उसे ऐसा प्रतीत होने लगा, मानो अकस्मात उसे किसी ने गहरे जल में धक्का दे दिया है। लेकिन, क्रमशः उस के उस विच्छेद में नये कार्य की थेकली लगा दी गई।

केवल इतना ही नही ; अपितु पहले जो उस के दिन व्यर्थ आलस्य में कट जाया करते थे, उधर दो वर्ष से अपनी आर्थिक अवस्था सुधारने की कोशिश के रूप में उस के मन में एक प्रकार की जबरदस्त क्रांति का उदय हुआ । उस के मन के सन्मुख 'मालदार; बनने की एकनिष्ठ इच्छा के सिवा और कोई चीज ही नहीं थी । इस नये उन्माद की तीव्रता के आगे पिछला जीवन उस को बिल्कुल ही सार हीन सा दृष्टिपात होने लगा ।

नारी जाति की प्रकृति में खास परिवर्तन ले आता है स्नेह, और पुरुष जाति की प्रकृति में कोई खास परिवर्तन होता है, तो उसकी जड़ में रहती है कोई न कोई दुष्ट-प्रवृति ।

जयगोपाल बाबू दो वर्ष पश्चात् आकर पत्नी से मिला तो उसे हू-बहू पहली सी पत्नी नहीं मिली । उस की पत्नी शशि के जीवन में उस के नव जात-साले ने एक नई ही परिधि स्थित कर दी है, जो पहले से ही कहीं अधिक विस्तृत और संकीर्णता से कोसों दूर है । शशि के मन के इस भाव से वह बिल्कुल ही अनभिज्ञ था । और, न इस से उस का मेल ही बैठता था । शशि अपने इस नवजात शिशु के स्नेह में से पति को भाग देने का बहुत यत्न करती, पर इस में उसे सफलता मिली या नहीं, कहना कठिन है ।

शशि नीलमणि को गोदी में उठा कर हँसती हुई पति के सामने आती और उन की गोद में देने की चेष्टा करती, किन्तु नील मणि पूरी ताकत के साथ दीदी के गले से चिपट जाता और अपने सम्बन्ध की तनिक भी परवाह न कर के दीदी के कंधे से अपने मुँह को छिपाने का प्रयप्न करता ।

शशि की इच्छा थी, कि उस के इस छोटे से भाई को मन बहलाने की जितनी ही प्रकार की विद्या आती है, सब की सब

बहनोई के आगे प्रगट हो जाये। लेकिन न तो बहनोई ने ही इस विषय में कोई आग्रह दिखाया और न साले ने ही कोई दिलचस्पी दिखाई। जयगोपाल बाबू की समझ में यह बिल्कुल न आया, कि इस दुबले-पतले चौड़े माथे वाले मनहूस सूरत, काले-कलूटे बच्चे में ऐसा कौन सा आकर्षण है, जिस के लिए उस पर प्यार की इतनी फिजूल खर्ची की जा रही है।

प्यार की सूक्ष्म से सूक्ष्म बातें नारी जाति चट से समझ जाती हैं। शशि तुरन्त ही समझ गई, कि जयगोपाल बाबू को नील मणि के प्रति कोई खास रुचि नहीं है। और वह शायद मन से उसे चाहता भी नहीं है। तब से वह अपने भाई को बड़ी सतर्कता से पति की दृष्टि बचा कर रखने लगी। जहां तक हो सकता, जयगोपाल की विराग दृष्टि उस पर नहीं पड़ने पाती।

और इस प्रकार, वह बच्चा उस अकेली का एक मात्र स्नेह का आधार बन गया; उस की वह इस प्रकार देख भाल रखने लगी, जैसे वह उस का बड़े जतन से इकट्ठा किया हुआ गुप्त धन है। सभी जानते हैं, कि स्नेह जितना ही गुप्त और जितना ही एकान्त का होता है, उतना ही तेज हुआ करता है।

नील मणि जब कभी रोता तो जयगोपाल बाबू को बहुत ही झुंझलाहट आती। अतः शशि झट से उसे छाती से लगा कर खूब प्यार कर कर के हँसाने का प्रयत्न करती; खास कर रात को उस के रोने से यदि पति की नींद उचटने की सम्भावना होती और पति यदि उस रोते हुए शिशु के प्रति हिंसात्मक भाव से क्रोध या घृणा जाहिर करता हुआ तीव्र स्वर में चिल्ला उठता, तब शशि मानो अपराधिनी सी संकुचित और अस्थिर हो जाती; और उसी क्षण उसे गोदी में लेकर दूर जाकर प्यार के स्वर में कहती—'सोजा मेरा राजा बाबू, सोजा' वह सो जाता।

बच्चों-बच्चों में बहुधा किसी न किसी बात पर झगड़ा हो ही जाता है ? शुरू शुरू में ऐसे अवसरों पर शशि अपने भाई का पक्ष लिया करती थी ; कारण उस की मां नहीं है । जब न्याया-धीश के साथ साथ न्याय में भी अन्तर आने लगा तब हमेशा ही निर्दोष नील मणि को कड़ा से कड़ा दण्ड भुगतना पड़ता । यह अन्याय शशि के हृदय में तीर के समान चुभ जाता और इस के लिए वह दंडित भाई को अलग ले जाकर, उसे मिठाई देकर, खिलौने देकर, गाल चूम कर के, दिलासा देने का प्रयत्न किया करती ।

परिणाम यह देखने में आता, है कि शशि नील मणि को जितना ही अधिक चाहती, जयगोपाल बाबू उतना ही उस पर जलता-भुनता रहता और वह जितना ही नील मणि से घृणा करता, गुस्सा करता, शशि उतना ही उसे अधिक प्यार करती ।

जयगोपाल बाबू उन इंसानों में से है, जो कि अपनी पत्नी के साथ कठोर व्यवहार नहीं करते, और शशि भी उन स्त्रियों में से है जो स्निग्ध स्नेह के साथ चुपचाप पति की बराबर सेवा किया करती हैं । किन्तु अब केवल नीलमणि को लेकर अन्दर ही अन्दर एक गुठली सी पकने लगी, जो उस दम्पति के लिये व्यथा दे रही है ।

इस प्रकार के नीरव द्वंद्व का गोपनीव आघात-प्रतिघात प्रगट संघर्ष की अपेक्षा कहीं अधिक कष्टदायक होता है, यह बात उन समवयस्कों से छिपाना कठिन है जो कि विवाहित दुनिया की सैर कर चुके हों ।

: ३ :

नील मणि की सारी देह में केवल सिर ही सब से बड़ा था। देखने में ऐसा प्रतीत होता जैसे विधाता ने एक खोखले-पतले बांस में फूंक मार कर ऊपर के हिस्से पर एक हंडिया बना दी है। डाक्टर भी अक्सर भय प्रगट करते हुए कहा करते, कि लड़का उस ढाँचे के समान ही निकम्मा साबित हो सकता है। बहुत दिनों तक उसे बात करना और चलना नहीं आया। उस के उदासीन गम्भीर चेहरे को देख कर ऐसा प्रतीत होता कि उसके माता-पिता अपनी वृद्धावस्था की सारी चिन्ताओं का भार, इसी नन्हे से बच्चे के माथे पर लाद गये हैं।

दीदी के जतन और सेवा से नील मणि ने अपने भय का समय पार कर के छठे वर्ष में पदार्पण किया।

कार्तिक में भइया-दूज के दिन शशि ने नील मणि को नये नये, बढ़िया वस्त्र पहनाये, खूब सजधज के साथ बाबू बनाया; और फिर उसके विशाल माथे पर टीका करने के लिये थाली सजाई। भइया को पटड़े पर बिठा कर अंगूठे में रोली लगा कर टीका कर ही रही थी, कि इतने में पूर्वोक्त मुँहफट पड़ौसिन तारा आ पहुँची, और आते के साथ ही बात की बात में शशि के साथ संघर्ष आरम्भ कर दिया।

वह कहने लगी—"हाय, हाय! छिपे-छिपे भइया का सत्यानाश कर के ठाट-बाट से लोक-दिखाऊ टीका करने से क्या फायदा?"

सुन कर शशि पर एक साथ आश्चर्य, क्रोध और वेदना की दामिनी सी टूट पड़ी। अन्त में उसे सुनना पड़ा कि 'वे दोनों औरत-मर्द मिल कर, सलाह कर के नाबालिग नील मणि की

अचल सम्पत्ति को मालगुजारी-वसूली में नीलाम करवा कर पति के फुफेरे भाई के नाम खरीदने की साजिश कर रहे हैं।

शशि ने सुनकर कोसना शुरू किया—"जो लोग इतनी बड़ी झूठी बदनामी कर रहे हैं, भगवान करे उन की जीभ जल जाये।" और अश्रु बहाती हुई सीधी वह पति के पास पहुँची; और उन से सब बात कह सुनाई।

जयगोपाल बाबू ने कहा—"आजकल के जमाने में किसी का भरोसा नहीं किया जा सकता। उपेन्द्र मेरा सगा फुफेरा भाई है, उस पर सारी अचल सम्पत्ति का भार डालकर मैं निश्चिंत था। उस ने कब माल गुजारी नहीं भरी और कब नीलाम में हासिल-पुर खरीद लिया, मुझे कुछ पता ही नहीं लगा।"

शशि ने आश्चर्य के साथ पूछा—"तुम नालिश नहीं करोगे?"

जयगोपाल बाबू ने कहा—"भाई के नाम नालिश कैसे करूँ?" और फिर नालिश करने से कुछ फल भी नहीं निकलेगा, गाँठ से और रुपये पैसे की बरबादी होगी।"

पति की बात पर भरोसा करना शशि का कर्त्तव्य है, किन्तु वह किसी भी तरह भरोसा न कर सकी? तब फिर, उसकी अपनी सुख की घर-गृहस्थी और स्नेह का दाम्पत्य जीवन सब कुछ सहसा भयानक रूप में उस के समक्ष आ खड़ा हुआ। जिस घर द्वार को वह अपना आश्रय समझ रही थी, अचानक देखा, कि उस के लिए वह एक निष्ठुर, फांसी बन गया है, जिसने चारों ओर से उन दोनों बहिन-भाई को घेर रखा है। वह अकेली अबला है, असहाय नील मणि को कैसे बचाये, उस की कुछ समझ में नहीं आता। जैसे-जैसे वह सोचने लगी वैसे-वैसे भय और घृणा से संकट में पड़े हुए अबोध भाई पर उसका प्यार बढ़ता ही गया। उसका हृदय ममता और आंखें

अश्रुओं से भर आईं। वह सोचने लगी, यदि उसे उपाय मालूम होता तो वह लाट साहब के दरबार में अपनी अर्जी दिलवाती ? और वहाँ से भी कुछ न होता तो महारानी विक्टोरिया के पास खत भेजकर अपने भाई की जायदाद अवश्य बचा लेती, और महारानी साहिबा नील मणि की वार्षिक सात सौ अट्ठावन रुपये लाभ की जायदाद हासिलपुर कदापि नही बिकने देतीं।

इस प्रकार शशि जबकि सीधा महारानी विक्टोरिया के दरबार में न्याय करा के अपने फुफेरे देवर को ठीक करने का उपाय सोच रही थी, तब सहसा नील मणि को तीव्र ज्वर चढ़ आया। और ऐसा दौरा पड़ने लगा, कि हाथ-पांव तन गये और बारम्बार बेहोशी बढ़ने लगी।

जय गोपाल ने गांव के एक देशी काले डाक्टर को बुलवाया। शशि ने अच्छे डाक्टर के लिए प्रार्थना की तो जय गोपाल बाबू ने उत्तर दिया—"क्यों ? मोती लाल क्या बुरा डाक्टर है ?"

शशि जब उस के पांवों पर गिर गई अपनी सौगन्ध खिला कर भयभीत हिरनी की तरह निहारने लगी, तब जयगोपाल बाबू ने कहा—"अच्छा, शहर से डाक्टर बुलवाता हूँ, ठहरो।"

शशि नील मणि को छाती से चिपटाये पड़ी रही। नील मणि भी एक पल के लिए भी उसे आंखों से ओझल नहीं होने देता; भय खाता, कि उसे धोखा देकर दीदी उस की कहीं चली जाये, और इसलिए वह सदा उस से चिपटा रहता; यहां तक कि सो जाने पर भी पल्लू कदापि नहीं छोड़ता।

सारा दिन इसी प्रकार बीत गया। संध्या के बाद दीया-बत्ती के समय जयगोपाल बाबू ने आकर कहा—"शहर का डाक्टर नहीं मिला, वह दूर कहीं मरीज देखने गया है।" और इस के साथ ही यह भी कहा—"मुकदमे के कारण मुझे अभी इसी समय

बाहर जाना पड़ रहा है। मैंने मोतीलाल से कह दिया है, दोनों वक्त आकर, अच्छी प्रकार से देख भाल किया करेंगे।

रात को नील मणि अंटसंट बकने लगा। भोर होते ही शशि और कुछ भी न सोच के, खुद रोगी भाई को लेकर नाव में बैठ कलकत्ता के लिए चल दी।

कलकत्ता जाकर देखा, कि डाक्टर घर पर ही हैं; कहीं बाहर नहीं गये हैं। भले घर की स्त्री समझ कर डाक्टर ने झटपट उस के लिए ठहरने का प्रबन्ध कर दिया और उस की मदद के लिए एक अधेड़ विधवा को नियुक्त कर दिया। नील मणि का इलाज चलने लगा।

दूसरे ही दिन जयगोपाल बाबू भी कलकत्ता आ धमका। मारे गुस्से के आग बबूला होकर उस ने शशि को तत्काल ही घर लौटने का हुक्म दिया।

शशि ने कहा—"मुझे यदि तुम काट भी डालो, तब भी मैं अभी घर नहीं लौटने की। तुम सब मिल कर मेरे नील मणि को मार डालना चाहते हो। उस के बाप नहीं, मां नहीं, मेरे सिवा उस का है ही कौन? मैं उसे बचाऊँगी, बचाऊँगी, अवश्य बचाऊँगी।"

जयगोपाल बाबू भावावेश में आकर बोला—"तो तुम यहीं रहो, मेरे घर अब कदापि मत आना।"

शशि ने उसी क्षण तपाक से कहा—"तुम्हारा घर कहाँ से आया? घर तो मेरे भाई का है।"

जयगोपाल बाबू बोला—"अच्छा देखा जायेगा।"

कुछ दिनों तक इस घटना को लेकर मुहल्ले के लोगों में चुहल बाजियाँ चलती रहीं, अनेक वाद-विवाद होते रहे। तभी पड़ोसिन तारा ने कहा—"अरे, खसम के साथ लड़ना ही हो तो घर पर रह कर लड़ो न, जितना लड़ना हो। घर छोड़ कर बाहर

लड़ने-झगड़ने की क्या जरूरत, कुछ भी हो, आखिर है तो अपना घरवाला ही।"

हाथ में जो कुछ जमा-पूँजी थी सब खर्च कर के, आभूषण आदि जो कुछ थे सब बेच कर किसी प्रकार शशि ने अपने नाबालिग भाई को मौत के मुँह से निकाल लिया? और तब उसे पता लगा, कि दुआर गांव में उन लोगों की जो बड़ी भारी खेती की जमीन थी; और उस पर उन की पक्की हवेली भी थी, जिस की वार्षिक आय लगभग डेढ़ सहस्र थी। वह भी जमींदार के साथ मिल कर जयगोपाल बाबू ने अपने नाम करा ली है। अब सारी अचल सम्पत्ति उस के पति की है, भाई का उस में कुछ भी हक नहीं रहा है।

रोग से छुटकारा मिलने पर नील मणि ने करुण-स्वर में कहा—"दीदी! घर चलो। वहाँ अपने साथियों से खेलने के लिए उस का जी मचल रहा है। इसी से प्रेरित होकर वह बार-बार कहने लगा—"दीदी! अपने उसी घर में चलो न।"

सुनकर शशि रोने लगी, बोली—"हम लोगों का अब घर कहाँ है?"

लेकिन, केवल रोने से ही फल क्या? अब दीदी के सिवा इस दुनियां में उस के भाई का है ही कौन? यह सोच कर शशि ने आंखें पोंछ डाली और साहस बटोर कर डिप्टी-मजिस्ट्रेट तारिणी बाबू के घर जा कर, उन की पत्नी की शरण ली।"

मजिस्ट्रेट साहब जयगोपाल बाबू को भली भाँति जानते थे। भले घर की बहू-बेटी घर से निकल कर जमीन जायदाद के लिए पति से झगड़ना चाहती है, इस बात पर वे शशि पर गुस्से हुए। उसे बातों में फुसलाये रख कर उसी समय उन्होंने जय गोपाल बाबू को पत्र लिखा। जयगोपाल बाबू साले सहित शशि जबरदस्ती नाव पर बिठा कर गांव ले गया।

इस दम्पति में द्वितीय विच्छेद के बाद, फिर यह द्वितीय मिलन हुआ। जनम-जनम का साथ सृष्टिकर्त्ता का विधान जो ठहरा।

बहुत दिन बाद घर लौटकर पुराने साथियों को पा कर नील मणि बहुत खुश हुआ, और आनन्द पूर्वक घूमने फिरने लगा। उस की निश्चिन्त खुशी को देख कर भीतर ही भीतर शशि की छाती फटने लगी।

: ४ :

शरद ऋतु आई। मजिस्ट्रेट साहब गांवों में छान बीन करने दौरे पर निकले और शिकार करने के लिए, जंगल से सटे हुए एक गांव में तम्बू तन गये। गाँव के मार्ग में साहब के साथ नील मणि की भेंट हुई। उस के सभी साथी साहब को देख कर दूर हट गये। निरीक्षण करता रहा। न जाने साहब को उस से कुछ दिलचस्पी हुई, उस ने पास बुलाकर पूछा—"तुम स्कूल में पढ़ते हो?"

बालक ने चुपचाप खड़े रह कर सिर हिला दिया—"हाँ।"

साहब ने पुनः पूछा—"कौन सी पुस्तक पढ़ते हो?"

नील मणि 'पुस्तक' शब्द का मतलब न समझ सका, अतः साहब के मुँह की ओर देखता रहा।

घर में पहुंच कर नील मणि ने साहब के साथ अपने इस परिचय की बात खूब उत्साह के साथ दीदी को बताई।

दोपहर को अचकन पाजामा पगड़ी आदि बांध कर जयगोपाल बाबू साहब का अभिवादन करने के लिए पहुंचा। साहब

उस समय तम्बू के बाहर खुली छाया में कैम्प मेज लगाये बैठे थे। सिपाही वगैरा की चारों ओर धूम मची हुई थी। उन्होंने जयगोपाल बाबू को चौकी पर बैठा कर गांव के हाल चाल पूछे। जयगोपाल बाबू सर्व साधारण गांव वालों के सामने जो इस प्रकार बड़प्पन का स्थान घेरे बैठा है, इस के लिए वह मन ही मन फूला नहीं समा रहा। उस के मन में बार बार यह विचार उठ रहे थे, कि इस समय चक्रवर्ती और नन्दी घराने का भी कोई आकर देख जाता तो, कितना अच्छा होता ?

इतने में नील मणि को साथ लिए हुए अवगुण्ठन ताने एक स्त्री सीधी साहब के सामने आकर खड़ी हो गई, बोली—"साहब आप के हाथ में मैं इस अनाथ भाई को सौंप रही हूँ, आप इस की रक्षा कीजिए।"

साहब पूर्व परिचित गम्भीर प्रकृति वाले बालक को देख कर, उस के साथ वाली स्त्री को भले घर की बहू बेटी समझ कर, उसी क्षण उठ के खड़े हो गये, बोले—"आप, तम्बू में आइये।"

"मुझे जो कुछ कहना है, वह यहीं कहूंगी।"

जयगोपाल बाबू का चेहरा फीका पड़ गया ; और घबराहट के मारे ऐसा हो गया, मानों अंगारे पर अचानक उस का पांव पड़ गया हो। गांव के लोग, तमाशा देखने के लिए खिसक-खिसक कर पास आने की चेष्टा करने लगे। तभी साहब ने बेंत उठाया, और सब भाग खड़े हुए।

तब फिर शशिकला ने अपने अनाथ भाई का हाथ थामे हुए उस अनाथ बच्चे का सारा इतिहास शुरू से आखिर तक कह सुनाया। जयगोपाल बाबू ने बीच-बीच में रुकावट डालने की चेष्टा की, पर साहब ने गरज कर उसे जहां का तहां बैठा दिया। "चुप रहो।" और बेंत के संकेत से उस चौकी से उठ कर सामने खड़ा होने का हुक्म दिया।

जयगोपाल बाबू शशि को मन ही मन कोसता हुआ सामने खड़ा रहा और नील मणि अपनी दीदी से बिल्कुल चिपट कर मुँह बाये चुपचाप खड़ा सुनता रहा।

शशि की बात सुनले ने पर साहब ने जयगोपाल बाबू से कई प्रश्न पूछे, और उन का उत्तर पा कर, बहुत देर तक चुप रह कर शशि को सम्बोधित कर के बोले—"बेटी ! यह मामला मेरी कचहरी में नहीं चल सकता, पर तुम बे फिक्र रहो, इस विषय में मुझे जो कुछ करना होगा, अवश्य करूँगा। तुम इस अनाथ भाई को लेकर बेधड़क घर जा सकती हो।"

शशि ने कहा—"साहब ! जब तक इस अनाथ को अपना मकान नहीं मिल सकता तब तक इसे लेकर घर जाने का साहस मैं नहीं कर सकती। अब, यदि आप इसे अपने पास नहीं रखते तो और कोई भी इस अनाथ की रक्षा नहीं कर सकता ?"

साहब ने पूछा—"तुम कहां जाओगी ?"

शशि ने उत्तर दिया—"मैं अपने पति के घर लौट जाऊँगी, मेरी कुछ फिक्र नहीं है। साहब मुस्कराया और तावीज बंधे उस दुबले पतले, गम्भीर स्वभाव वाले काले रंग के उस दुखी अनाथ बालक को अपने पास रखने को तैयार हो गया।

इस के उपरान्त शशि जब विदा होने लगी, तब बालक ने उस की धोती का छोर पकड़ लिया।

साहब ने कहा—"बेटा ! तुम डरो मत, आओ मेरे पास आओ।

अवगुण्ठन के भीतर अश्रुओं से झरना बहाते और पोंछते हुए अनाथ की दीदी ने कहा—"मेरा राजा भैया है न, जा, जा, साहब के पास जा—तेरी दीदी तुझ से फिर मिलेगी, अच्छा।"

इतना कह कर उसने नील मणि को उठा कर छाती से लगा

लिया, और माथे पर, पीठ पर हाथ फेर कर किसी प्रकार उसके पतले हाथों से अपनी धोती का छोर छुड़ाया और बड़ी तेजी से वहाँ से चल दी ? साहब ने तुरन्त ही बांये हाथ से उस अनाथ बालक को रोक लिया और बालक—"दीदी ! दीदी ! चिल्लाता हुआ जोर-जोर से रोने लगा। शशि ने एक बार मुड़ कर, दूर से अपना दाहिना हाथ उठा कर, अपनी ओर से उसे चुप होने के लिये सांत्वना दी और अपने टूक-टूक हुए हृदय को ले कर, और भी तेजी से आगे निकल गई।

फिर उसी बहुत दिनों की पुरानी हवेली में पति-पत्नी का मिलन न हुआ। सृष्टि कर्त्ता का विधान जो ठहरा।

लेकिन यह मिलन अधिक दिन तक न रह सका। कारण, इस के कुछ ही दिन बाद, एक दिन भोर होते ही गांव वालों ने सुना, कि रात को जयगोपाल बाबू की स्त्री हैजे से मर गई, और रात ही को उस का अंतिम संस्कार हो गया।

बिदा के समय शशि अपने अनाथ भाई को वचन दे आई थी कि उसकी दीदी उससे फिर मिलेगी, पता नहीं उस बचन को वह निभा सकी अथवा नही।

—:०:—

अवगुंठन

महामाया और राजीव लोचन दोनों सरिता के तट पर एक प्राचीन शिवालय के खंडहरों में मिले। महामाया ने मुख से कुछ न कह कर अपनी स्वाभाविक गम्भीर दृष्टि से तनिक कुछ तिरस्कृत अवस्था में राजीव की ओर देखा ; जिसका अर्थ था कि किस बिरते पर तुम आज बे समय मुझे यहां बुला ले आये हो ? मैं अब तक तुम्हारी सभी बातों का समर्थन करती आई हूँ, इसी से तुम्हारा इतना साहस बढ़ गया।

राजीव लोचन तो वैसे ही महामाया से सदैव त्रस्त रहता है, उस पर यह चितवन ! बेचारा कांप उठा। साहस बटोर कर कुछ कहना चाहता था, किन्तु उस की आशाओं पर उसी क्षण पानी फिर गया और अब, इस भेंट का शीघ्रता से कोई न कोई कारण बिना बताये भी उस का छुटकारा नहीं हो सकता। अतः यह शीघ्रता से कह बैठा—"मैं चाहता हूँ, कि यहां से कहीं भाग चलें और वहां जाकर दोनों विवाह कर लें।" राजीव जिन विचारों को प्रगट करना चाहता था, विचार तो उसने ठीक वही प्रगट किए; किन्तु जो भूमिका वह बनाकर लाया था, वह न जाने कहां गुम हो गई ? उस के विचार बिल्कुल रस हीन और निरर्थक सिद्ध हुए सो तो ठीक है ही ; लेकिन सुन ने में भी भद्दे और अजीब से लगे। वह स्वयं ही सुन कर भौंचक्का सा रह गया। और भी दो चार बात जोड़ कर उसे तनिक नरम बना देने की

शक्ति उस में न रही। शिवालय के खंडहरों में सरिता के तट पर इस जलती हुई दुपहरिया में महामाया को बुलाकर उस मूर्ख ने केवल इतना ही कहा—"चलो, हम कहीं चल कर विवाह कर लें।"

महामाया कुलीनों के घर की अविवाहित कन्या है। अवस्था है चालीस वर्ष की। जैसी बड़ी अवस्था है, वैसा ही सौन्दर्य। शरद् की धूप के समान पक्के सोने के रंग की प्रतिमा सी लगती है, उस धूप जैसी ही दीप्त और नीरव उस की दृष्टि है दिव्यलोक जैसी उन्मुक्त और निर्भीक। उस के पिता नहीं है, केवल बड़ा भाई है। उस का नाम है भवानी चरण। भाई बहन का स्वभाव एक सा ही है। मुख से कहता नहीं, पर तेज ऐसा है कि दोपहर के सूर्य की तरह चुप के से जला सब कुछ देते हैं। खास कर भवानी चरण से लोग अकारण ही भय खाया करते हैं।

राजीव लोचन परदेसी है। यहां की रेशम की कोठी का बड़ा साहब उसे अपने साथ ले आया था। राजीव के पिता इसी साहब की कोठी में काम करते थे। उन के स्वर्गवासी हो जाने पर साहब ने उन के नाबालिग लड़के के लालन-पालन का सारा भार अपने ऊपर ले लिया, और बाल्यकाल से ही उसे वह अपनी इस वामनहारी की कोठी में ले आया। लड़के के साथ केवल उस की स्नेह करने वाली बुआ थी। राजीव अपनी बुआ के साथ भवानी चरण के पड़ोस में रहा करता था। महामाया उस की बाल-सहचरी थी, और राजीव की बुआ के साथ उसका सुदृढ़ स्नेह बंधन था।

राजीव की अवस्था क्रमशः सोलह, सत्रह, अठारह, यहां तक कि उन्नीस वर्ष की हो गई; फिर भी बुआ के अनुरोध करने पर भी वह विवाह नहीं करना चाहता था। साहब उस की इस सुबुद्धि का परिचय पाकर बहुत ही प्रसन्न हुआ। उसने सोचा, कि लड़के

ने उन्हीं को अपना आदर्श बना लिया है। साहब भी अवि-वाहित थे।

इस बीच में बुआ भी स्वर्गवासिनी बनी।

इधर ताकत से अधिक व्यय किए बिना महामाया के लिए अनुरूप और योग्य पात्र मिलना कठिन हो रहा था और उस की कुमारी-अवस्था भी क्रमशः बढ़ती ही जा रही थी।

पाठकगणों को यह बताने की आवश्यकता नहीं कि परिणय-बन्धन में बांधना जिन देवता का काम है, वे यद्यपि इन दोनों के प्रति अब तक बराबर लापरवाही ही दिखा रहे थे; लेकिन प्रणय-बन्धन का बोझ जिस पर है उस ने अब तक अपना समय व्यर्थ नहीं किया। वृद्ध प्रजा-पती जिस समय झोंके ले रहे थे नवयुवक कन्दर्प उस समय पूर्णतया सावधान था।

कामदेव का प्रभाव भिन्न-भिन्न प्रकार से पड़ा करता है। उन के प्रभाव में आकर राजीव अपने मन की दो बातें कहने के लिए पर्याप्त अवसर ढूँढ रहा था, पर महामाया उसे अवसर ही नहीं देती थी।

वास्तव में उस की निस्तब्ध गम्भीर चितवन राजीव के व्यथित हृदय में एक प्रकार का भय पैदा कर देती थी।

आज सैकड़ों बार शपथ लेने के बाद, राजीव उसे, आज इस शिवालय के खंडहरों में ला सका इसी से उस ने सोचा कि जो कुछ उसे कहना है, आज सब कुछ कह सुन लेगा, उस के बाद, या तो जिन्दगी भर सुख से रहेगा और नहीं तो आत्महत्या कर लेगा। जीवन के एक संकट मय दिन में राजीव ने केवल इतना ही कहा—"चलो, विवाह कर लें।" और उस के उपरान्त पाठ भूले हुए छात्र के समान सकपका कर चुप रह गया।

महामाया को मानो यह आशा ही न थी, कि राजीव उस के सन्मुख ऐसा प्रस्ताव रख देगा। इस से देर तक वह चुप खड़ी रही।

दोपहरी की बहुत सी अनिर्दिष्ट करुण ध्वनियां होती हैं, वे सब की सब इस सन्नाटे में फूट निकलीं। वायु से शिवालय का आधा हिलगा हुआ टूटा द्वार बीच-बीच में बहुत ही क्षीण स्वर में धीरे धीरे खुलने और बन्द होने लगा। कभी शिवालय के झरोके में बैठा हुआ कपोत गुटुरगूं-गुटुरगूं करता तो कभी बाहर सेमर के वृक्ष पर बैठा हुआ पक्षी खुट-खुट करता, कभी सूखे पल्लवों के ऊपर से सरासर करती हुई गिरगिट निकल जाती तो कभी सहसा मैदान की ओर से वायु का एक जोर का झोंका आता और उस से सब पेड़ों के पत्ते बार बार आर्त्तनाद कर उठते ; बीच बीच में सहसा नदी का जल जागृत हो जाता और टूटे घाट की सीढ़ियों पर छल-छल छपक-छपक चोट करने लगता। इन सब अकस्मात उदासी में डूबे हुए अलस शब्दों के बीच बहुत दूरी पर, एक वृक्ष के नीचे किसी गड़रिये की बांस की बांसुरी में से मैदानी राग निकल रहा है। राजीव को महामाया के मुख की ओर देखने की हिम्मत नहीं हुई। वह शिवालय की भींत के सहारे स्वप्न की सी अवस्था में चुपचाप खड़ा खड़ा सरिता के निर्मल जल की ओर निहारता रहा।

कुछ देर के पश्चात् मुँह फेर कर राजीव ने फिर एक बार भिक्षुक की तरह महामाया के मुख की ओर देखा महामाया ने उसका आशय समझा, सिर हिलाते हुए कहा—"नहीं, ऐसा नहीं हो सकता।"

महामाया का सिर जैसे ही हिला, वैसे ही राजीव की आशा भी उसी क्षण पृथ्वी पर मूर्च्छित होकर गिर पड़ी। कारण, राजीव यह भली भांति जानता था, कि महामाया का सिर महामाया के निजी मतानुसार ही हिलता है ; और किसी की ताकत नहीं, कि उसे अपने मत से विचलित कर सके ? अपने कुल का शक्ति युक्त

अभिमान स्रोत महामाया के वंश में न जाने किस काल से बहता चला आ रहा है ? भला आज, वह राजीव जैसे अकुलीन ब्राह्मण के साथ विवाह करने के लिए कैसे तैयार हो सकती है ? प्यार करना और बात है और विवाह के सूत्र में बंधना और बात। कुछ भी हो, महामाया समझ गई, कि उसके अपने ही विचार व्यवहार के कारण राजीव का घमण्ड यहाँ तक चढ़ गया है। और उसी क्षण वहाँ से चलने के लिए उद्यत हो गई।

राजीव ने समय एवं परिस्थति से अवगत होते हुए कहा—"कल ही यहाँ से चला जा रहा हूँ।"

महामाया ने पहले तो विचार किया, कि अब उसे ऐसा भाव दिखाना चाहिए कि जहाँ चाहे रहो, इस से उसे क्या मतलब ? पर दिखा न सकी। पग बढ़ाना चाहा, पर बढ़ा नहीं सकी—उस ने शान्त मुद्रा में पूछा—"क्यों ?"

राजीव ने कहा—"हमारे साहब को यहाँ से सोनापुर के लिए बदली हो गई है, वे जा रहे हैं, सो मुझे भी साथ लेते जायेंगे।"

महामाया का बहुत देर तक मुख न खुल सका। वह सोचती रही, दोनों के जीवन की गति दो ओर है, किसी भी इन्सान को सदैव के लिए नजरबन्द नहीं किया जा सकता; अतः उस ने शान्त ओष्ठों को तनिक खोल कर कहा—"अच्छा।"

उसका यह 'अच्छा' कुछ कुछ गहरी उसास-सी सुनाई दी। और इतना ही कह के वह जाने के लिए तैयार हो गई। इतने में राजीव ने चौंक कर कहा—"भवानी बाबू।"

महामाया ने देखा, भवानीचरण शिवालय की ओर आ रहे हैं। समझ गई, कि उन्हें सब पता लग गया है। राजीव ने महामाया पर अकस्मात् मुसीबत आते हुए देख कर, शिवालय की टूटी हुई दीवार फांद कर भागने का प्रयत्न किया; किन्तु महामाया ने हाथ पकड़ कर उसे रोक लिया। भवानी चरण शिवालय के खंड-

हरों में पहुँचे, और सिर्फ एक बार चुपचाप दोनों की ओर स्थिर दृष्टि से देखा।

महामाया ने राजीव की ओर देखते हुए अविचलित स्वर में कहा—'राजीव मैं तुम्हारे घर ही आऊँगी। तुम मेरी राह देखना।'

भवानी चरण चुपचाप शिवालय से बाहर आ गये। महामाया भी चुपचाप उन का अनुकरण करने लगी और राजीव चकित सा हो कर वहीं खड़ा रहा; मानों उसे फांसी का दण्ड सुनाया गया हो।

: २ :

उसी दिन रात को भवानी चरण ने विशेष रेशमी साड़ी ले कर महामाया को दी, और बोले—"इसे पहन आओ।"

महामाया उसे पहन आई। उस के बाद बोले—"अब, मेरे साथ चलो।" आज तक भवानी चरण की आज्ञा तो दूर रही, संकेत तक का भी किसी ने उल्लंघन नहीं किया था? महामाया ने भी नहीं।

उसी रात्रि को दोनों सरिता के तट पर श्मशान भूमि की ओर चल दिये। श्मशान भूमि अधिक दूर नहीं थी। वहाँ गंगा यात्री के घर में एक बूढ़ा ब्राह्मण अंतिम घड़ियाँ गिन रहा था। उस की खटिया के पास दोनों पहुँच कर खड़े हो गये। घर के एक कोने में पुरोहित ब्राह्मण भी मौजूद था। भवानी चरण ने उस से संकेत में कुछ कहा। वह शीघ्र ही शुभानुष्ठान की तैयारियाँ कर के पास आ खड़ा हुआ। महामाया समझ गई, कि इस मृत्यु

को आलिङ्गन करने वाले इंसान के साथ उस का विवाह होगा। उस ने रत्ती भर भी विरोध नहीं किया। समीप में ही जलती हुई दो चिताओं के प्रकाश में उस अंधेरे से घर में मृत्यु की यंत्रणा की आर्त्त-ध्वनि के साथ अस्पष्ट मन्त्रोच्चारण मिला कर महामाया का पाणिग्रहण संस्कार करा दिया गया।

जिस दिन विवाह हुआ उस के दूसरे दिन ही महामाया विधवा हो गई। इस दुर्घटना से महामाया को तिल मात्र भी शोक न हुआ और राजीव भी अचानक महामाया के विवाह की सूचना पा कर जैसा दुखी हुआ था, वैधव्य की सूचना से वैसा न हुआ, बल्कि उसे कुछ खुशी ही हुई।

पहले उस ने सोचा, कि साहब को सूचित कर दे और उस की सहायता से इस अमानुषिक अत्याचार पर किसी प्रकार प्रतिबन्ध लगा दिया जाये ? तभी विचार आया, कि साहब तो सोनापुर जा चुका है। राजीव को भी वह साथ ले जाना चाहता था, पर वह एक मास का अवकाश लेकर यहीं रह गया है।

महामाया ने उसे वचन दिया है—"तुम मेरी राह देखना।" उस की वह किसी प्रकार भी उपेक्षा नहीं कर सकता ? इतने में बड़े जोर की आँधी के साथ मूसलाधार वर्षा होने लगी। आँधी क्या थी, भयंकर तूफान था, राजीव को ऐसा महसूस होने लगा, मानो अभी उस के सिर पर मकान ही टूट पड़ेगा। जब उस ने देखा कि उस के अन्तःकरण के समान बाह्य-प्रकृति में भी एक प्रकार की प्रलय सी उठ खड़ी हुई है, तब उसे कुछ-कुछ शांति सी मिली। उसे ऐसा प्रतीत होने लगा, कि मानों स्वयं प्रकृति ही आकाश पाताल एक कर के, उस से कहीं अधिक शक्ति का प्रयोग कर के उस का काम पूरा कर रही है।

इसी समय बाहर से किसी ने द्वार पर जोर से धक्का मारा। राजीव ने शीघ्रता के साथ द्वार खोला। घर में भीगे वस्त्र पहने

हुए एक स्त्री ने प्रवेश किया। चेहरे पर उस के लम्बा अवगुंठन पड़ा हुआ था। राजीव ने उसी क्षण पहचान लिया, यह तो महामाया है। उस ने आवेग भरे स्वर में पूछा—"महामाया! तुम चिता से उठ आई हो?"

महामाया ने कहा—"हां! मैंने तुम्हें वचन दिया था, कि मैं तुम्हारे घर आऊँगी? उसी वचन को पालने के लिए आई हूँ; लेकिन राजीव, मैं अब ठीक पहले की तरह नहीं हूँ। मेरा सब कुछ बदल गया है; लेकिन अपने मन में मैं महामाया हूं। अब भी बोलो और यदि तुम वचन दो, कि कभी भी तुम मेरा अवगुंठन न हटाओगे मेरा मुख न निहारोगे तो मैं जीवन भर तुम्हारे साथ रह सकती हूँ।"

मृत्यु को चंगुल से वापस मिल जाना ही बहुत है, उस समय और सब बातें तुच्छ मालूम देती हैं। राजीव ने शीघ्रता से कहा—"तुम जैसे चाहो, वैसे रहना। मुझे छोड़ जाओगी तो मैं नहीं रह सकता।"

महामाया ने कहा—"तो अभी चलो। तुम्हारा साहब जहां गया है, वहीं ले चलो मुझे।"

घर में जो कुछ था, सब कुछ छोड़ छाड़ कर राजीव महामाया को ले कर उसी प्रकृति के प्रकोप में निकल पड़ा। ऐसा बंवडर चल रहा था, कि खड़ा होना मुश्किल था, उस के वेग से कंकड़ियां उड़-उड़ कर बन्दूक के छर्रों के समान शरीर में चुभने लगे। दोनों के दोनों इस भय से कहीं सिर पर वृक्ष न गिर पड़े, सड़क छोड़ कर विस्तृत मैदान में होकर रास्ता पार कर ने लगे? वंवडर का जोर पीछे से धकेलने लगा, मानों वह इन्हें इस दुनिया से छीन कर प्रलय की ओर उड़ाये लिये जा रहा हो।

: ३ :

पाठक इस कथा को कोरी कवि-कल्पना ही न समझें। जिन दिनों यहां सती की प्रथा प्रचलित थी, उन्हीं दिनों ऐसी घटनायें कभी-कभी हो जाया करती थीं।

महामाया के हाथ पैर बांध कर यथा समय चिता में रख के उस में आग लगा दी गई थी। आग भी खूब जोरों से जल उठी थी। लेकिन उसी समय बहुत जोर का बवंडर उठा और मूसला धार वर्षा पड़ने लगी। जो दाह संस्कार करने आये थे वे शीघ्रता स 'गंगायात्री' वाली कोठरी में जा छिपे और भीतर से द्वार बन्द कर लिया। सभी समझते हैं, कि ऐसे आंधी-पानी में चिता बुझते, समय नहीं लगता। इसी बीच में उस के हाथों में बंधा कपड़ा जल कर भस्म हो गया और हाथ खुल गये। असह्य दाह पीड़ा में मुख से वह कुछ कह न सकी, तुरन्त उठ कर बैठ गई, और पैर की रस्सी खोल डाली। उस के बाद कई स्थानों से जली हुई साड़ी से देह को छिपाये हुए लगभग नङ्गी सी चिता से उठ कर पहले वह अपने घर आई। घर में कोई था नहीं? सब श्मशान में थे। दीपक जला कर एक धोती पहन कर महामाया ने एक बार दर्पण में अपना चेहरा देखा और दर्पण जमीन पर दे पटका। फिर कुछ देर खड़ी-खड़ी सोचती रही। उस के बाद चेहरे पर लम्बा अवगुंठन किया और राजीव के घर की ओर चल दी। इस के बाद जो कुछ हुआ, सो पाठकों को मालूम ही है।

महामाया अब राजीव के पास ही रहती है; लेकिन राजीव के जीवन में सुख-शान्ति नहीं। अधिक कुछ नहीं, दोनों के बीच केवल अवगुंठन का व्यवधान है।

लेकिन वह अवगुंठन मौत के समान फिर स्थाई ही नहीं,

अपितु मृत्यु से भी बढ़कर पीड़ा उत्पादक है। इसलिए कि निराशा मृत्यु की विरह पीड़ा को धीरे-धीरे अचिंतन रूप प्रदान कर देती है, किन्तु इस अवगुंठन के पृथक रूप ने एक जीती जागती आशा को प्रतिदिन प्रति पल व्यथित एवं पीड़ित कर रखा है।

एक तो पहले ही महामाया की शान्त प्रकृति है, उस पर उस के इस अवगुंठन के भीतर नीरवता दुगुनी असह्य सी प्रतीत होने लगी। राजीव अब ऐसे रहने लगा, जैसे उसे मृत्यु की चलती फिरती पुतली ने घेर लिया हो। वह पुतली उस के जीवन को आलिंगन कर के नित्य-प्रति उसे क्षीण करती जा रही है। राजीव पहले जिस महामाया नाम से परिचित था उसे तो उस ने खो ही दिया। अब तो वह केवल उस की सुन्दर बाल्य स्मृति पर ही जीवन को अवलम्बित कर के इस दुनिया में रह सकता है, परन्तु उसमें भी यह अवगुण्ठन युक्त पुतली सदैव उस के पार्श्व में रह कर बाधा पहुँचाती रहती है। वह सोचता है, इंसान इंसान में स्वभाव से ही काफी अन्तर है और खास कर महामाया तो महाभारत के कर्ण के समान स्वाभाविक कवच धनी है। वह अपने स्वभाव के इर्द-गिर्द एक प्रकार का आवरण लेकर जन्मी है। उपरान्त बीच में, फिर मानो वह पुनर्जन्म लेकर और एक आवरण लेकर आई है। रात-दिन साथ रहती हुई भी वह इतनी दूर चली गई है, कि मानो राजीव से उस दूरी को पार नहीं किया जाता, मानो वह केवल एक माया की रेखा के बाहर बैठकर अतृप्त तृषित मन से इस सूक्ष्म एवं अटल रहस्य से अवगत होने का प्रयत्न कर रहा है, जैसे तारागण प्रत्येक निशा में नींद रहित निर्निमेष नत नयनों से अन्धकार यामिनी के रहस्य से अवगत होने के निष्फल प्रयास में रात्रि बिता दिया करते हैं। इस प्रकार

ये दोनों चिर परिचित संग रहित साथी भिन्न २ जीव के रूप में बहुत काल तक एक साथ बने रहे ।

एक दिन, बरसात के मौसम में, शुक्ल पक्ष की दशमी की रात्रि को बादल फटे और निशिकर ने दर्शन दिये। निशिकर की ज्योत्सना में यामिनी सोती हुई पृथ्वी के सिरहाने बैठी जागरण कर रही थी । उस यामिनी को बिस्तरे से उठ कर राजीव भी झरोखे के पास जा बैठा। बरखा और गर्मी के संगम से थके हुए उपवन में से एक प्रकार की सुगन्ध और झींगुरों की भिन्न भिन्न की ध्वनि कमरे में आ कर उस के मनोराज्य में एक प्रकार की अराजकता व्याप्त कर रही थी । राजीव देख रहा था बागीचे के अंधकार में खड़े हुए वृक्षों के उस पार शान्त स्थिर सरोवर मंजी हुए स्वच्छ रजत-थाल के समान चमक रहा है। इंसान ऐसे समय में स्पष्ट तौर पर कुछ भी सोच सकता है या नहीं, बताना कठिन है। पर हाँ, इतना अवश्य कहा जा सकता है, कि उस का सम्पूर्ण हृदय किसी एक दिशा की ओर प्रवाहित हुआ करता है, गन्ध-युक्त उपवन के समान ही एक सुगन्ध से पूर्ण उच्छवास छोड़ता रहता है। पता नहीं, राजीव ने क्या २ विचारा ? उसे प्रतीत हुआ, कि मानो आज उस के पहले के सब नियम टूट गये हैं । आज इस बरसात की रात ने उसके समक्ष अपना मेघों का अव-गुंठन हटा डाला है। और आज की यह यामिनी पहले की उस महामाया के समान निस्तब्ध शून्य और सुगम्भीर हो गई है । होते-होते अकस्मात ऐसा हुआ, कि राजीव का ध्यान जीती जागती पुतली की ओर प्लावित हो गया। स्वान चालित के समान चल कर राजीव ने महामाया के कमरे में प्रवेश किया। महामाया उस समय निन्द्रा लोक की सैर कर रही थी ।

राजीव उस की शय्या के पास जा कर खड़ा हो गया। मुंह झुका कर देखा, महामाया के अवगुंठन से हीन चेहरे पर चन्द्र-

ज्योत्सना आ पड़ी है ; लेकिन ! हाय ! यह क्या ? वह चिरपरिचित पुष्प के समान खिला हुआ चेहरा कहां गया ? चिताग्नि की शिखा अपनी विकराल लहलहाती हुई जिह्वा से महामाया के बांये कपोल का थोड़ा सा सौन्दर्य चाट कर वहां सदैव के लिए अपनी राक्षसी भूख की अमिट चिन्ह छोड़ गई है ।

शायद राजीव चौंक पड़ा हो। शायद एक अव्यक्त ध्वनि भी उस के कंठ से मुखरित हो गई होगी। महामाया तत्काल आश्चर्य चकितावस्था में जाग उठी। देखा, सामने राजीव खड़ा है। उसी क्षण वह अवगुंठन खींच कर, शय्या छोड़ कर, एक दम उठ खड़ी हुई। राजीव ताड़ गया कि अब उस के सिर पर दामिनी टूटना चाहती है। वह फर्श पर गिर पड़ा; और महामाया के चरणों को स्पर्श कर बोला—"मुझे क्षमा करो, महामाया मुझे क्षमा कर दो।"

महामाया कुछ भी उत्तर न दे कर, एक पल के लिए भी पीछे की ओर न हट कर, घर से बाहर निकल गई। राजीव के घर फिर वह कभी नहीं लौटी। उस का कहीं भी पता न चला। इस क्षमा हीन चिर-गमन की क्रोधाग्नि राजीव के सम्पूर्ण जीवन पर सदैव के लिए सुदीर्घ दग्ध चिन्ह छोड़ गई।

—:०:—

पाषाणी

अपूर्व कुमार बी० ए० पास कर के ग्रीष्मावकाश में विश्व की महान् नगरी कलकत्ता से अपने गांव को लौट रहा था।

मार्ग में छोटी सी नदी पड़ती है। वह बहुधा बरसात के अन्त में सूख जाया करती है; परन्तु अभी तो सावन मास है। नदी अपने यौवन पर है; गांव की हद और बांस की जड़ों का आलिंगन करती हुई, तीव्रता से बहती चली जा रही है।

लगातार कई दिनों की घनघोर बरसात के बाद आज तनिक मेघ छटे हैं और नभ पटल पर सूर्य देव के दर्शन हो रहे हैं।

नौका पर बैठे हुए अपूर्व कुमार के हृदय में बसी हुई प्रतिमा यदि दिखाई देती तो देखते, कि वहां भी इस नवयुवक की हृदय सरिता नव वर्षा से बिल्कुल तट तक भर गई है; और सरिता का जल ज्योति से झिल-मिल-झिल मिल और वायु से छप् छप् कर रहा है।

नौका यथास्थान घाट पर जा लगी। नदी के उस तट पर से वृक्षों की आड़ में से अपूर्व के घर की छत स्पष्ट दिखाई दे रही है। घर पर किसी को खबर तक नहीं, कि अपूर्व शहर से लौट रहा है, अतः घर पर से लिवाने के लिए कोई नहीं आया? नाविक सूटकेस उठाने के लिए तैयार हुआ तो अपूर्व ने उसे इन्कार कर दिया। वह स्वयं ही सूटकेस हाथ में उठा कर आनन्द की लहर से झटपट नौका से उतर पड़ा।

उतरते ही, घाट पर थी फिसलन, सूटकेस सहित वह दलदल में गिर पड़ा, और ज्यों ही गिरा, त्यों ही न जाने किधर से मोटी ऊँची हास लहरी ने आ कर समीप के पीपल पर बैठी हुई चिड़ियों को उड़ा दिया।

अपूर्व बहुत ही लज्जित हुआ, और झटपट स्वयं को सम्भाल कर चहुं ओर देखने लगा, देखा कि घाट का एक छोर पर जहाँ महाजन की नौका से नई ईंटें उतार कर इकट्ठी की गई हैं उन्हीं पर बैठी हुई एक नव यौवना हँसते हँसते लोट पोट हो रही है।

अपूर्व ने पहचान लिया, कि वह उसी के पड़ोसिन की लाड़ली बेटी मृगमयी है। पहले इन का घर यहाँ से बहुत दूरी पर बड़ी नदी के तट पर था। दो तीन साल गुजरे, नदी की बाढ़ के कारण उन्हें वह स्थान छोड़ कर यहाँ चला आना पड़ा।

मृगमयी के विषय में बहुत कुछ अपवाद सुनने के लिए मिलता है। ग्रामीण वासी पुरुष तो इसे स्नेह के स्वर में पगली कह कर पुकारते हैं; लेकिन उन की घरवालियाँ इस के उद्दण्ड स्वभाव से सर्वदा त्रस्त, चिन्तित और शंकित रहा करती हैं। गांव के छोकरों के साथ ही उस का खेल होता है, क्योंकि समव्यस्क लड़कियों के प्रति उस की अवज्ञा की सीमा नहीं। बालकों के राज्य में यह लड़की एक प्रकार से शत्रु पक्ष की सेना के उपद्रव के समान सी प्रतीत होती है।

पिता की लाड़ली बिटिया ठहरी, और इसीलिए वह इतनी निर्भय रहती है। वास्तव में इस विषय में मृगमयी की मां अपनी सहेलियों के आगे हर समय अपने पति के विरुद्ध फरियाद किया ही करती, मगर फिर भी यह सोच कर, कि पिता बेटी को लाड़ करते हैं और जब ये अवकाश के समय घर रहते हैं, तो मृगमयी

के नेत्रों के अश्रु उन के हृदय पटल पर बहुत ही आघात पहुंचाते हैं, वे प्रवासी पति का स्मरण कर के लड़की को किसी भी तरह पीड़ा नहीं पहुंचा सकती ?

मृगमयी का रंग देखने में अधिक साफ नहीं है । छोटे २ घुंघराले केश पीठ पर आच्छादित रहते हैं । चेहरे पर बिल्कुल बचपना छाया रहता है। बड़ी २ कजरारी आंखों में न तो लज्जा है, न भय और न हाव भाव में किसी प्रकार का संशय ? वह लम्बी परिपुष्ट स्वस्थ और सबल । उस की आयु अधिक है या कम, यह प्रश्न किसी के मन में उठता ही नहीं यदि उठता तो ग्रामीण पड़ोसी इस बात पर मां-बाप की निन्दा करते, कि अभी तक यह कुंवारी ही फिर रही है । जब कभी गांव के विदेशी जमींदार की नौका आ कर घाट पर लगती है, तो उस दिन ग्रामीण वासी, उन की आवभगत में घबड़ा से जाते हैं, गृहणियों की मुख रंग-भूमि पर अकस्मात नाक के नीचे तक अवगुण्ठन खींच जाता है; परन्तु मृगमयी न जाने कहाँ से किसी के वस्त्रों से हीन बच्चे के उठाये हुए घुंघराले केशों को पीठ पर बिखरे जा खड़ी होती है । जिस देश में कोई शिकारी नहीं, कोई मुसीबत नहीं, उस देश की मृगी के शावक की तरह निडर खड़ी हुई आश्चर्य चकित सी देखा करती; और अन्त में बाल-संगियों के पास जा कर इस नये मानव के आचार व्यवहार के विषय में विस्तार के साथ भूमिका बांधती ।

हमारे अपूर्व कुमार ने अवकाश के दिनों में घर आ कर इस से पहले और भी दो चार बार इस सीमा हीन नवयौवना को देखा है; और फालतू समय में, यहां तक, कि काम के समय में भी, इस के विषय में विचार किया है । इस धरा पर बहुत से चेहरे देखने में आते हैं; पर कोई २ चेहरा ऐसा होता है, कि न

कुछ कहना न सुनना, चट से मन के भीतर जा कर ऐसा बस जाता है, कि उसे निकालना मुश्किल हो जाता है। केवल सौन्दर्य के कारण ही ऐसा होता है। सो बात नहीं, वह तो कुछ और ही है, सम्भवतः वह है स्वच्छता। अधिकांश चेहरों पर मानव प्रकृति पूरी तौर से अपनी ज्योति से नहीं जगमगा पाती ; जिस चेहरे पर, हृदय के कोने में छिपा हुआ वह रहस्यमय व्यक्ति बिना रुकावट के बाहर निकल कर दिखाई देता है, वह चेहरा सैकड़ों हजारों में छिपता नहीं; पल भर में हृदय पटल पर अंकित हो जाता है। इस लड़की के चेहरे पर आंखों पर एक चंचल और उद्दण्ड नारी प्रकृति सदैव स्वच्छन्द और बन के दौड़ते हुए हिरन की तरह दिखाई देती रहती है, भागती फिरती है; और इसीलिए ऐसे सलोने चंचल मुख को एक बार देख लेने पर फिर सहज में वह भुलाये नहीं, भूला।

पाठक गण को यह बताने की आवश्यकता नहीं, कि मृगमयी की कौतुहलता से भरी हास्य ध्वनि चाहे कितनी ही मृदु क्यों न हो, लेकिन अभागे अपूर्व के लिए वह तनिक कुछ दुखदायी ही साबित हुई ? मारे लज्जा के उस का चेहरा सुर्ख हो उठा, और हाथ का सूटकेस झट-पट नाविक के हाथ में सौंप कर वह शीघ्रता से अपने घर की ओर चल दिया।

प्रकृति नटी का सुन्दर नृत्य। नदी का किनारा, वृक्षों की छाया, पक्षियों का मृदु कलरव, प्रभात की मीठी मीठी धूप, और बीस वर्ष की अवस्था। कतिपय, ईंटों का ढेर ऐसा कुछ खास उल्लेख योग्य नहीं ; पर उस पर जो मानवी बैठी थी, उस ने उस शुष्क और नीरस आसन पर भी एक प्रकार का मूक सौन्दर्य का भाव फैला रखा था। छिः ! छिः ! ऐसे दृश्य के मध्य में प्रथम पग उठाते ही, जिस का सारा का सारा व्यक्तित्व प्रहसन

में परिवर्तित हो जाये तो उस के भाग्य की इस से बढ़ कर निष्ठुरता और क्या हो सकती है ?

: २ :

ईंटों के ढेर से बहती हुई हँसी की तरंग सुनते-सुनते वृक्षों की छाया के नीचे से दलदल में सनी निम्न दुकुल और सूटकेस लिए हुए श्रीयुत अपूर्व जी किसी तरह अपने घर पहुँचे ?

अकस्मात ही बेटे के पहुँच जाने से विधवा मां मारे उल्लास के फूली न समाई। उसी समय खोया, दही, दूध और बढ़िया मछली की तलाश में दूर-पास सब स्थानों पर आदमी दौड़ाये गये; और पास पड़ौस में भी एक प्रकार की हल चल सी पैदा हो गई।

भोजन की समाप्ति पर मां ने बेटे के आगे व्याह का प्रस्ताव छेड़ा। अपूर्व इस के लिए तैयार था ही। कारण; यह प्रस्ताव बहुत पहले से ही पेश था, केवल अपूर्व तनिक कुछ नई रोशनी के चक्कर में आ कर हठ कर बैठा था, कि बी० ए० पास किए बिना विवाह हरगिज नहीं कर सकता इत्यादि। अब तक उस की मां उस के पास होने की ही राह देख रही थी; सो अब किसी प्रकार की आपत्ति उठाने के मायने हैं, कि झूठी बहाने बाजी। अपूर्व ने कहा—"पहले लड़की तो देखो, फिर देखा जायेगा।"

मां ने उत्तर दिया—"लड़की वड़की सब देखी जा चुकी हैं, उस के लिए तुझे फिक्र करने की जरूरत नहीं।"

किन्तु अपूर्व उस के लिए स्वयं ही फिक्र करने के लिए उद्यत हो गया, बोला—"लड़की बिना देखे मैं व्याह नहीं कर सकता।"

माँ सोच में पड़ गई। ऐसी अनोखी बात तो आज तक नहीं सुनी थी। फिर भी वह राजी हो गई।

रात को, अपूर्व दीपक बुझा कर बिस्तर पर जा पड़ा। पड़ते ही बरसात यामिनी की सारी की सारी स्वर लहरी और पूर्व निस्तब्धता के उस पार से उस की सेज पर एक उच्छ्वासित उच्च मृदु कंठ की हास-ध्वनि आ आ कर उस के कानों में झंकरित होने लगी। उस का अशांत मन स्वयं को बारम्बार निरन्तर यह कह-कह कर व्यथित करने लगा, कि सवेरे वह जो पैर फिसल कर गिर पड़ा था उस का किसी न किसी युक्ति से सुधार कर लेना ही चाहिए ? उस नव यौवना को यह मालूम ही नहीं, कि मैं अपूर्व कुमार हूँ, अचानक फिसलन पर पाँव पड़ जाने से दलदल में गिर जाने पर भी मैं कोई उपेक्षणीय गाँव का वासी नहीं।"

अगले दिन अपूर्व को लड़की देखने जाना था। अधिक दूर नहीं, पड़ौस में ही लड़की वालों का घर है। तनिक कुछ कोशिश करने के बाद ही कपड़े बदन पर डाले। निम्न दुकुल (धोती) और दुपट्टा छोड़ कर रेशमी अचकन, सिर पर अमीरी ढंग की गोल पगड़ी और पैरों में बढ़िया चमकते हुए जूते पहन कर, रेशमी कपड़े की बढ़िया छतरी हाथ में लटकाये वह सवेरे ही चल दिया।

भावी ससुराल में घुसते ही वहाँ कोलाहल सा मच गया। अन्त में यथा समय कम्पित हृदया को झाड़ पोंछ कर, रंग-बंग कर, जूड़े में गोटे-गोटा आदि लगा कर, एक पतली रंगीन साड़ी में लपेट कर उसे भावी पति के सामने लाया गया। आगुन्तका एक कोने में लगभग घुटनों तक माथा झुकाये चुपचाप जड़ वस्तु सी बैठी रही; और उस के पीछे धैर्य बँधाये रखने के लिए खड़ी रही एक अधेड़ अवस्था की दासी। उस का एक भाई, जो कि

अभी बच्चा ही था, अपने परिवार में अनाधिकार प्रवेश करने वाले इस नये व्यक्ति की पगड़ी, घड़ी की चेन और उठती हुई मूछों की ओर बड़े ध्यान से टक टकी लगाये देखने लगा। अपूर्व ने कुछ देर मूछों पर हाथ फेरने के बाद अन्त में गम्भीरता के साथ पूछा—"तुम क्या पढ़ती हो ?"

आभूषणों के भार से दबी हुई लज्जा की गठरी में से उसे अपने प्रश्न का कोई भी उत्तर नहीं मिला। दो चार बार पूछे जाने और अधेड़ दासी द्वारा पीठ पर बारम्बार धैर्य की थपकियां पड़ने के बाद लड़की ने बहुत ही धीमे स्वर में शीघ्रता के साथ एक ही सांस में कह कर छुट्टी पाली—"कन्या बोधिनी दूसरा भाग, व्याकरण सार, भूगोल, अंकगणित और भारत का इतिहास।"

इतने में बाहर किसी की तेज चलने की धम-धम की आवाज सुनाई दी और दूसरे ही क्षण दौड़ती हांफती और पीठ पर केशों को हिलाती हुई मृगमयी वहाँ पर आ धमकी। उस ने अपूर्व की ओर आंख उठा कर देखा तक नहीं, सीधी उस भावी बधू के भाई राखाल के पास पहुंची और उस के कोमल हाथ को पकड़ कर खींचना शुरू कर दिया। राखाल उस समय भावी बधू को देखने में लीन था; वहां से वह किसी भी तरह टस से मस नही हुआ ? दासी अपने संयत कण्ठ की मृदुता की भरसक रक्षा करती हुई यथा साध्य तीव्रता के साथ मृग मयी को धिक्कारने लगी। अपूर्व अपनी सारी की सारी मौनता और यश को एकत्रित कर के पगड़ी बंधे माथे को ऊँचा कर के बैठा रहा और उदर के पास लटकती हुई घड़ी की चैन को हिलाने लगा।

अन्त में मृगमयी ने जब देखा, कि उस का साथी किसी भी तरह विचलित नहीं हो रहा, तब उस ने उस की कमर पर जोर का मुक्का जमा दिया और लगे हाथों भावी बधू के माथे का अवगुंठन उघाड़ कर वह आंधी के वेग के समान जिस प्रकार

आई थी उसी प्रकार भाग गई। दासी मन मार कर रह गई और भीतर ही भीतर घुमड़-घुमड़ कर गरजने लगी। राखाल अचानक अवगुण्ठन के हट जाने से एकाएक खिलखिला पड़ा। इस खुशी में कमर पर पड़े मुक्के की चोट को भी उस ने महसूस नहीं किया कारण, ऐसा लेन-देन अकसर हुआ ही करता था, इस में किसी प्रकार की आ जनवीनता नहीं थी। इस के लिए एक दृष्टान्त ही बहुत है।

एक दिन की बात है मृगमयी के केश तब पीठ तक बढ़े थे; राखाल ने अचानक पीछे से आकर कैंची से उस के बाल काट दिए; इस पर मृगमयी को बहुत क्रोध आया और उस ने चट से राखाल के हाथ से कैंची छीन कर अपने शेष केशों को बड़ी निर्दयता से कतर कतर कर उस के मुंह पर दे मारे। मृग मयी के घुंघराले केशों के गुच्छे डाली से गिरे हुए काले अंगूरों के गुच्छों की तरह धरा पर गिर पड़े। इन दोनों में शुरू से ही इस प्रकार की प्रणाली प्रचलित थी।

इस के बाद वह शांत सभा अधिक देर तक न चल सकी। गठरी सी बनी भावी वधू अपने को बड़ी कठिनता से लम्बी बना कर दासी के साथ घर के भीतर चली गई। अपूर्व अपनी मूछों पर हाथ फेरता हुआ उठ खड़ा हुआ। बाहर जा कर देखा, कि उस का बढ़िया नया जूता वहां से गायब है। बहुत प्रयत्न करने पर भी इस बात का पता नहीं लगा, कि जूते कौन ले गया और कहां गये?

घर वाले सभी बड़े परेशान से हुए और अपराधी के नाम पर अपशब्दों की बौछार होने लगी। जब किसी प्रकार भी जूतों का पता नहीं लगा, तो अन्त में विवश हो कर घर मालिक की फटी पुरानी ढीली चट्टी पहन कर पतलून पगड़ी से सुस-

ज्जित अपूर्व गांव के कीचड़ वाले रास्ते को बहुत सावधानी के साथ पार करता हुआ घर की ओर चल दिया।

तालाब के किनारे सुनसान पथ पर पहुँचते ही सहसा फिर उसे वही जोर का परिहासत्मक स्वर सुनाई दिया। मानों वृक्ष और पल्लवों की आट में से कौतुक प्रिया बन देवी ही अपूर्व की उन पुरानी चट्टियों को देख कर एकाएक हंस पड़ी हो।

अपूर्व कुछ लज्जित सा हो कर ठिठक गया और इधर-उधर दृष्टि फेंक कर देखने लगा। इतने में सघन झाड़ियों में से निकल कर किसी निर्लज्ज अपराधिनी ने उस के सामने नये जूते रख दिये और चट से बाहर जाने के लिए उद्यत हुई, कि अपूर्व ने उस के दोनों हाथ पकड़ कर अपनी कैद में ले लिया?

मृगमयी ने यथा शक्ति टेढ़ी तिरछी होकर पूरी शक्ति का प्रयोग कर के भागने का बहुत प्रयत्न किया; लेकिन सब व्यर्थ। घुंघराले केशों से घिरे हुए उस के गोल मटोल चेहरे पर सूर्य की किरणें वृक्षों की डालियों और पल्लवों में छन छन कर पड़ने लगी। कौतुहलता से वशीभूत हो कर कोई पथिक, जिस प्रकार दिवाकर की किरणों से चमकती हुई स्वच्छ चंचल निर्झरणी की ओर झुक कर टकटकी लगाये उस की तली को देखता रहता है, ठीक उसी तरह अपूर्व ने मृगमयी के ऊपर उठे हुए चेहरे पर तनिक झुक कर, उस की खंजन सी चंचल आंखों के भीतर गहरी दृष्टि फेंक कर देखा; और फिर बहुत धीमे से उसे अपनी मुट्ठियों के बन्धन से मुक्त कर दिया। अपूर्व क्रोधित मुद्रा में मृगमयी को पकड़ कर मारता तो उसे तनिक भी अचम्भा न होता; किन्तु इस प्रकार सुन-सान पथ में इस अनोखी सजा का वह कुछ अर्थ ही न समझ सकी।

नर्त्तन करती हुई प्रकृति नटी के नूपुरों की झंकार की भांति

फिर वही हास्य ध्वनि उस नीरव पथ में गूंज उठी और चिन्ता डर अपूर्व धीरे धीरे पग उठाता हुआ घर की ओर चल दिया।

: ३ :

अपूर्व उस दिन अनेक प्रकार के बहाने बना-बना कर न तो घर के अन्दर गया और न मां से भेंट की। किसी के यहाँ भोज का निमन्त्रण था; वहीं खा आया। अपूर्व जैसा पढ़ा लिखा और भावुक नवयुवक एक मामूली पढ़ी लिखी लड़की के मुकाबले अपने छिपे हुए गौरव का बखान करने और उसे आन्तरिक महत्ता का पूर्ण परिचय देने के लिए क्यों इतना आतुर हो उठा; यह समझना बहुत कठिन है? एक निरी गांव की चंचल बाला ने उसे मामूली नवयुवक समझ ही लिया, तो क्या हो गया? और उस ने पल भर के लिए अपूर्व का परिहास कर के और फिर उस के अस्तित्व को किसी ताक पर रख कर, राखाल नाम के अबोध बच्चे के साथ खेलने के लिए इच्छा प्रकट की, तो उस में अपूर्व का बिगड़ ही क्या गया? इन बच्चों के सामने उसे प्रमाणित करने की ही आवश्यकता ही क्या है कि वह विश्व दीप मासिक पत्र में पुस्तकों की समालोचना लिखा करता है और उस के सूटकेस में एसेन्स, जूते, रुबिनी के कैम्फर, पत्र लिखने के रंगीन कागज और 'हारमोनियम शिक्षा' पुस्तक के साथ एक पूरी लिखी हुई प्रेस कापी, यामिनी के गर्भ में भावी उषा की तरह, प्रज्वलित होने की राह देख रही है; पर मन को समझाना कठिन है, कम से कम इस देहाती चंचल लड़की के सामने श्री

अपूर्व कुमार बी० ए० हार मानने के लिए किसी प्रकार भी तैयार नहीं ?

संध्या को अपूर्व जब घर के भीतर पहुँचा, तो उस की मां ने पूछा—"क्यों रे लड़की देख आया ? कैसी है, पसंद है न ?"

अपूर्व ने कुछ लजाते हुए उत्तर दिया—"हां देख तो आया मां, उन में से मुझे एक ही लड़की पसन्द है।"

मां ने तनिक कुछ आश्चर्य चकित स्वर में पूछा—"तूने कितनी लड़कियाँ देखी थीं वहां ?"

अन्त में दो चार प्रश्नोत्तर के बाद मां को मालूम हुआ कि उन के लड़के ने पड़ोसिन शारदा की लड़की मृगमयी पसंद की है इतना पढ़ लिख कर भी यह पसंद।

परिणाम यह निकला कि कमबख्त अड़ियल टट्टू की तरह गर्दन टेढ़ी कर के, कुछ पीछे को उठ कर कह बैठी—"मैं ब्याह नहीं करूंगी, जाओ।"

: ४ :

इस पर भी उसे ब्याह करना ही पड़ा।

उस के बाद अध्ययन शुरु हुआ। अपूर्व की मां के घर जा कर एक ही रात में मृगमयी की अपनी सारी दुनिया ने बेढ़ियां पहन लीं।

सास ने वधू का सुधार करना आरम्भ कर दिया। बहुत ही कठोर मुद्रा बना कर उस से बोली—"देखो बेटी, अब तुम नन्हीं बच्ची नहीं रहीं........हमारे घर में ऐसी बेहाई नहीं चल सकेगी।"

सास ने यह बात जिस भाव से कही, मृगमयी ठीक उसे उसी रूप में न समझ सकी। उस ने विचारा, कि इस घर में यदि न चले, तो शायद कहीं दूसरी जगह जाना पड़ेगा। मध्यान्ह के बाद वह घर में नहीं दिखाई दी। 'कहाँ गई ? कहाँ गई ?" शोर मच गया। ढूंढ़ शुरू हुई। अन्त में विश्वास-घातक राखाल ने उस के गुप्त स्थान का पता बता कर, उसे कैद करवा ही दिया। वह बड़ वृक्ष के नीचे श्री राधा कान्त जी के टूटे रथ में जाकर छिप गई थी।

सब ही के सामने मां ने और पास पड़ौस की गृह स्त्रियों ने उसे कितना डांटा फटकारा और लज्जित किया, इस की कल्पना स्वयं आप ही बना लें तो अच्छा हो ?

रात्रि को खूब घन घोर घटाये छा गई और रिमझिम-रिमझिम मेंह बरसने लगा। अपूर्व ने धीरे से मृगमयी के पास शय्या पर जा कर उस के कान में धीमे स्वर से कहा—मृगमयी क्या तुम मुझे प्यार नहीं करती ?"

मृगमयी ने तत्काल ही कड़क कर उत्तर दिया—"नहीं। मैं तुम्हारे से हरगिज प्यार नहीं कर सकती।" मानो उस ने सारी गुस्से की पोटली अपूर्व के माथे पर दे मारी।

अपूर्व ने खिन्न स्वर में पूछा—"क्यों, मैंने तुम्हारा क्या बिगाड़ा है ?" इस दोष की सन्तोष जनक कैफियत देना तो कठिन है। अपूर्व ने मन ही मन कहा, इस विद्रोही मन को जैसे भी बने वश में करना ही होगा।

अगले रोज सास ने मृगमयी में विद्रोही भाव के सब लक्षण देख कर उसे अन्दर के कोठे में बन्द कर दिया। पिंजड़े में फँसी नई चिड़िया की तरह पहले तो वह कोठे के अन्दर फड़फड़ाती रही अन्त में जब कहीं से भी भागने का कोई मार्ग दिखाई न दिया

तो हताश, क्रोध से उन्मत्त हो बिछौने की चादर के दांत से धज्जियाँ उड़ादीं और धरा पर औंधी गिर पड़ी और मन ही मन पिता की याद कर कर के रोने-चिल्लाने लगी।

ठीक इसी समय धीरे से कोई उस के समीप जा कर बैठ गया। बड़े स्नेह से उस के धूल धुसरित केशों को कपोलों पर से एक ओर हटा देने का प्रयत्न करने लगा। मृगमयी ने बड़े जोर से अपना सिर हिला कर उस का हाथ हटा दिया। अपूर्व ने उस के कानों के पास अपना मुँह ले जा कर बहुत ही कोमल स्वर में कहा—"मैंने चुप के से द्वार खोल दिया है, चलो, अपने पीछे के बगीचे में आ जायें।"

मृगमयी ने जोर से सिर हिलाते हुए कहा—"नहीं।"।

अपूर्व ने उस की ठोढ़ी पकड़ कर उस का मुँह ऊपर को उठाना चाहा और बोला—"एक बार देखो तो सही कौन आया है ?" राखाल धरा पर औंधी लेटी हुई मृगमयी को घूरता हुआ हत बुद्धि ही द्वार पर खड़ा था। मृगमयी ने बिना मुँह उठाये ही अपूर्व का हाथ झटक कर अलग कर दिया। अपूर्व ने कहा—"देखो राखाल तुम्हारे साथ खेलने आया है; इस के साथ खेलने नहीं जाओगी।"

उस ने कुपित स्वर में कहा—"नहीं।"

राखाल ने भी देखा, कि मामला कुछ संगीन है। वह किसी प्रकार वहाँ से निकल, जान बचा कर भाग गया ? अपूर्व चुपचाप बैठा रहा। जब मृगमयी अश्रु बहा कर सो गई तब वह चुप के से उठा और द्वार की सांकल चढ़ा, दबे पाँव वहाँ से चल दिया।

इस के अगले ही रोज मृगमयी को पिता की एक चिट्ठी मिली उस में उन्होंने प्राण प्यारी बेटी मृगमयी के ब्याह में न आने के कारण विलाप कर के अन्त में नव दम्पति को शुभ आशीष दिया था।

मृगमयी ने सास माँ के पास जाकर कहा—"मैं पिता जी के पास जाऊँगी।" सास मां ने अनायास ही बधू की इस असम्भव प्रार्थना को सुन कर उसे फटकार दिया, बोली—"पिता का कहीं और ठिकाना भी है, कि ऐसे ही पिता जी के पास जायेगी। तेरा तो हर काम दुनिया से निराला ही है। लाड़ मुझे पसन्द नहीं।"

वधू ने कोई उत्तर नहीं दिया? अपने कमरे में जाकर उस ने भीतर से द्वार बन्द कर लिया और बिल्कुल निराश मानव, जिस प्रकार देवी देवताओं से प्रार्थना करता है, उसी तरह वह कहने लगी—"पिता जी, तुम मुझे ले जाओ यहाँ से। यहाँ मेरा कोई नहीं है? मैं यहाँ जीवित न रह सकूंगी।"

अधिक रात चले जाने पर, जब उस के पति निन्द्रा में खो गये, तब वह चुप के से द्वार खोल कर बाहर चल दी। वास्तव में बीच-बीच में मेघों की गर्जन सुनाई देती थी, फिर भी बिजली की रोशनी में रास्ता दिखाई देने लायक काफी रोशनी थी। पिता जी के पास जाने के लिये कौन से रास्ते को पकड़ना चाहिये, मृगमयी को कुछ भी पता न था? उसे तो केवल इतना ही विश्वास था, कि जिस रास्ते से पत्रवाहक डाक ले कर जाते हैं, उसी मार्ग से दुनिया के किसी भी ठिकाने पर पहुँचा जा सकता है? मृगमयी भी उसी रास्ते पर चलती रही। चलते चलते उस के शरीर का चूरा हो गया, रात्रि का लगभग अन्तिम पहर भी खत्म हो चला। सुनसान वन में, जब कि दो चार पक्षी पंख हिला हिला कर अनिश्चित स्वर में बोलना चाहते थे और समय का पूर्ण निर्णय न कर सकने के कारण दुविधा में फँस चुप रह जाते थे, उस समय मृगमयी सड़क के किनारे नदी के तट पर के बाजार में जा पहुँची। इस के बाद, वह विचार कर ही रही

थी, कि अब किस ओर चलना चाहिये, इतने में उसे परिचित 'झमझम' शब्द सुनाई दिया ? थोड़ी देर में कंधे पर चिट्ठियों का थैला लटकाए हांफता हुआ पत्रवाहक 'खट' आ पहुँचा। मृगमयी जल्दी से उस के पास जा कर करुण स्वर में बोली—"कुशीगंज, मैं पिता के पास जाऊँगी, तुम मुझे साथ ले चलो न।"

उस ने उत्तर दिया—"कुशीगंज कहाँ है, इस का मुझे नहीं मालूम। छोटा सा उत्तर दे कर वह घाट पर जा पहुँचा ; और घाट पर बंधी हुई डाक की नौका में बैठ कर नाविक को जगा कर नौका खुलवा दी। उस समय उसे किसी पर दया करने या पूछ-ताछ करने की फुरसत नहीं थी।

देखते-देखते बाजार और घाट सजग हो गये। मृगमयी ने घाट पर पहुँच कर एक नाविक से कहा—"मुझे कुशीगंज पहुँचा सकोगे।"

उस नाविक के उत्तर देने से पहले ही, बगल की नौका पर से कोई बोल उठा—"अरे कौन है ? मृगी बिटिया, तू यहाँ कैसे आई ?"

मृगमयी ने व्यग्रता से उत्तर दिया—"बनमाली ! मैं पिता जी के पास कुशीगंज जाऊँगीं, तू अपनी नौका पर मुझे ले चल।"

बन माली उस के गाँव का ही नाविक था। वह उस उच्छृं-खल मानवी को भली-भाँति पहचानता था। उस ने पूछा—"बाबूजी के पास जायेगी बिटिया। बड़ी अच्छी बात है। चल, मैं तुझे पहुँचा दूँ।"

मृगमयी नौका पर जा बैठी।

नाविक ने नौका छोड़ दी। मेघों ने अश्रु बहाना शुरू कर दिया। सावन भादों के समान पूरी चढ़ी हुई नदी के थपेड़े

नौका को जोर जोर से सिर हिलाने लगे । मृगमयी का सारा शरीर थकावट और नींद के मारे टूटने सा लगा, आँखें नींद से बोझिल हो गई और वह आँचल बिछा कर लेट रही और लेटते ही वह चंचल नव यौवना नदी के हिंडोले में प्रकृति के स्नेह छाया में पालित शिशु की तरह बेधड़क सो गई।

आँख खुली, तो देखा, कि वह अपनी ससुराल में पड़ी सो रही है। उसे जगते देख, महरी बड़बड़ाने लगी । उस का बड़-बड़ाना सुन कर सास मां भी आ पहुँची और जो मन में आया वह कहा। मृगमयी आँखें फाड़-फाड़ कर शान्त हो उन के मुख की ओर देखती रही। अन्त में सास माँ ने भी जब उस के पिता की शिक्षा पर व्यंग करना शुरू कर दिया तब मृगमयी ने जल्दी से उठ, बगल की कोठरी में घुस कर अन्दर से द्वार बन्द कर लिया।

अपूर्व ने लाज को बिल्कुल ही ताक पर रख कर मां से कहा—"मां! वधू को दो चार दिन के लिये उस के घर ही भेज देने में कोई हर्ज की बात नहीं?"

मां ने अपूर्व को बुरी तरह आड़े हाथों लिया, बोली—"नपूते! दुनिया में इतनी लड़कियाँ होते हुए भी न जाने कहाँ से छांट-छांट के ऐसी हड़जाल को मेरी छाती पर डाल दिया।"

इस प्रकार के कटु शब्द अपूर्व को निर्दोष होते हुए भी सुनने पड़े।

: ५ :

उस रोज सारे दिन घर के बाहर बूंदा-बांदी और अन्दर अश्रु की वर्षा होती रही।

अगले रोज अर्ध रात्रि को अपूर्व ने मृगमयी को धीरे से जाकर पूछा—"मृगमयी, क्या तुम अपने पिता जी के पास जाना चाहती हो ?"

मृगमयी ने चौंक कर जल्दी से अपूर्व का हाथ पकड़ कर कृतज्ञ कंठ से उत्तर दिया—"हाँ।"

तब अपूर्व ने चुप के से कहा—"तो चलो, हम दोनों चोरी-चोरी भाग चलें। मैंने घाट पर नौका का प्रबन्ध कर रखा है।"

मृगमयी ने इस बार कृतज्ञ दृष्टि से अपूर्व की ओर देखा ; और उस के बाद तत्काल ही उठ, कपड़े बदल, चलने के लिए उद्यत हो गई। अपूर्व ने मां को किसी प्रकार की फिक्र न हो, इसलिए एक पत्र लिख कर रख दिया और रात्रि के नीरव पहर में घर से निकल पड़े।

मृगमयी ने उस नीरव और शान्त अन्धेरी में पहली ही बार अपने मन से पूर्ण अवस्था एवं विश्वास के साथ पति का हाथ पकड़ा ; उस के अपने ही हृदय का उद्वेग उस स्पर्श मात्र से अपूर्व की नसों में भी संचारित होने लगा।

नौका उसी रात्रि के नीरव पहर में वहाँ से चल दी। अकस्मात खुशी के होते हुए भी मृगमयी को बहुत जल्दी ही नींद ने आ दबाया। अगले रोज आनन्द ही आनन्द था। दोनों ओर कितने ही बाजार, खेत और जंगल दिखाई दे रहे थे। इधर उधर कितनी ही नौकायें आ जा रही थीं। मृगमयी उन्हें देखकर पूछने लगी—"उस नौका पर क्या है ? ये लोग कहाँ से आ रहे हैं, इस स्थान को क्या कहते हैं ?" ये सवाल ऐसे पेचीदा थे जो अपूर्व ने कभी भी कालिज की किताबों में कहीं नहीं पढ़े थे और उस के कलकत्ता जैसी महा नगरी के तजुर्बे के बाहर थे। फिर भी उस ने उस के मन को संतुष्ट करने के लिए जो भी उत्तर दिये थे, वे सब मृगमयी को बहुत अच्छे लगे थे।

दूसरी संध्या को नौका कुशीगंज के घाट पर जा लगी। पास में ही टीन के एक छोटे से झोंपड़े में, मैली सी धोती बांधे, काँच की भद्दी लालटेन जला, छोटे से डेक्स पर एक चमड़े की जिल्द वाला बड़ा सा रजिस्टर रख कर, नंगे बदन स्टूल पर बैठे, ईशानचन्द्र कुछ लिख पढ़ रहे थे। इसी समय इस नव दम्पति ने झोंपड़े में प्रवेश किया। मृगमयी ने पुकारा—"पिता जी।" उस झोंपड़ी में आज तक ऐसी मृदु ध्वनि इस प्रकार, इस से पहले और कभी भी नहीं सुनाई दी थी।

ईशान के नेत्रों से टप-टप आँसू गिरने लगे। उस समय वे निश्चय न कर सके, कि उन्हें क्या करना चाहिये। उनकी बिटिया और दामाद मानो साम्राज्य के युवराज और युवराज्ञी हैं। यहाँ पटसन के ढेर के बीच में उन के बैठने लायक स्थान कैसे बनाया जा सकता है? इसी के निर्णय हेतु उन की भटकती हुई बुद्धि और भी भटक गई और खाने पीने का प्रबन्ध? यह भी दूसरी चिन्ता की बात थी। निर्धन बाबू अपने हाथ से दाल-भात पका कर किसी प्रकार पेट भर लेता है, पर आज इस खुशी के अवसर पर क्या खिलाये, और क्या करे?

मृगमयी पिता को असमंजस में देख कर फौरन बोली—"पिताजी, आज हम सब मिल कर रसोई तैयार करेंगे।"

अपूर्व ने इस नवीन प्रस्ताव पर उत्साह प्रगट किया। उस छोटी सी झोंपड़ी में स्थान की कमी, आदमी की कमी और अन्न की बहुत कमी थी। लेकिन छोटे से छिद्र में से जिस प्रकार फौव्वारा चौगुने वेग से छूटता है, उसी प्रकार निर्धनता के सूक्ष्म सुराख से खुशी का फौव्वारा तीव्रता से छूटने लगा।

इसी प्रकार तीन दिन बीत गये। दोनों समय नियमित रूप से स्टीमर आता, यात्रियों का आना जाना और शोर-गुल

सुनाई देता था, लेकिन संध्या के समय नदी का तट बिल्कुल सुनसान हो जाता था तब अपूर्व एक अनोखी स्वतंत्रता का अनुभव किया करता था। तीनों मिल कर कहीं की कहीं रसोई तैयार किया करते थे। उस के बाद नई २ चूड़ियों से भरे हाथों से उस का परोसा जाना, श्वसुर और जामाता का सम्मिलित रूप से भोजन करना और नई गृहिणी के भोजन की त्रुटियों पर परिहास किया जाना, इस पर मृगमयी का अभिमान करना, इन सब बातों से सब का मन पुलकित हो उठता था।

अन्त में अपूर्व ने कहा, कि अब अधिक दिन ठहरना उचित नहीं। मृगमयी ने कुछ और दिन ठहरने की प्रार्थना की। लेकिन ईशान बाबू ने कहा—"नहीं, अब नहीं।"

बिदा बेला पर बिटिया को छाती से लगा, उस के माथे पर स्नेह सिंचित हाथ को रख कर अश्रु मिश्रित स्वर में ईशान चन्द्र ने कहा—"बिटिया, तू अपनी सुसराल में ज्योति जगाना, लक्ष्मी बन कर रहना···जिस से मेरी भी नू में कोई दोष न निकाल सके।"

मृगमयी अश्र बहाती हुई अपने पति के साथ विदा हो गई और ईशान बाबू अपनी उसी झोंपड़ी में लौट कर उसी पुराने नियम के अनुसार माल तोल कर दिन पर दिन और मास पर मास बिताने लगे।

: ६ :

दोनों अपराधियों की युगल जोड़ी जब घर पहुँची तो मां गम्भीर बनी रही, किसी से कुछ बात नहीं की? मां की ओर से

किसी के व्यवहार में कोई दोष ही प्रदर्शित नहीं किया गया, कि जिसकी सफाई के लिए दोनों में से कोई कुछ प्रयत्न करता ? इस शान्त अभियोग ने, इस मूक अभिमान ने, पर्वत की तरह सारी घर गृहस्थी को अटल होकर दबा रखा।

जब यह सहन शक्ति से बाहर की बात हो गई तो अपूर्व ने कहा—"मां, कालेज खुल गया है, अब मुझे कानून पढ़ने जाना पड़ेगा।" मां ने कुछ उदासीनता प्रगट करते हुए कहा—'बधू का क्या करोगे ?" अपूर्व ने कहा—"यहीं रहेगी।"

मां ने उत्तर दिया—"ना बेटा, यहाँ पर उस की जरूरत नहीं। उसे तुम अपने साथ ही लेते जाओ।"

अपूर्व ने अभिमान पीड़ित स्वर में कहा—"जैसी इच्छा।"

कलकत्ता लौटने की तैयारी मां करने लगी। लौटने के एक दिन पहले, रात को अपूर्व जब अपने कमरे में विश्राम के लिए गया, तो देखा, कि मृगमयी शय्या पर पड़ी रो रही है।

अनायास ही उस हृदय को चोट पहुँची। व्यथित स्वर में बोला—"मृगमयी ! मेरे साथ महानगरी चलने को मन नहीं चाहता क्या ?"

मृगमयी ने उत्तर दिया—"नहीं।"

अपूर्व ने पुनः पूछा—"क्या तुम मुझ से प्रेम नहीं करती ?"

इस प्रश्न का कुछ भी उत्तार न मिला। विशेषतया इस प्रकार के प्रश्न का उत्तार बहुत ही सरल हुआ करता है ; किन्तु कभी कभी इस के अन्दर मनस्तर की इतनी जटिलता होती है, कि कन्या से ठीक वैसे उत्तार की आशा नही की जा सकती।"

अपूर्व ने प्रश्न किया—"राखाल को छोड़ कर यहाँ से चलने की इच्छा नहीं होती है क्या ?"

मृगमयी ने बड़ी सुगमता से उत्तर दिया—"हां।"

इसे सुन कर बी० ए० पास अपूर्व के हृदय में सुई के बराबर बालक राखाल की ओर से ईर्ष्या का अंकुर उठ खड़ा हुआ। बोला—"बहुत दिनों तक गाँव नहीं लौट सकूंगा। शायद दो ढाई साल या इन से भी अधिक समय लग जाये।"

इस के विषय में कुछ न कह कर मृगमयी बोली—"वापस आते समय राखाल के लिए एक बढ़िया सा राजस का चाकू लेते आना।"

अपूर्व लेटे हुए था; तनिक उठ कर बोला—"तो तुम यहीं रहोगी।"

मृगमयी ने उत्तर दिया—"हाँ, अपनी माँ के पास जा कर रहूंगी।"

अपूर्व ने ठण्डी सी उच्छवास छोड़ी, बोला—"अच्छा, वहीं रहना। अब जब तक तुम बुलाने की चिट्ठी नहीं लिखोगा, मैं नहीं आऊँगा। अब तो खुश हो न।"

मृगमयी ने इस प्रश्न का उत्तर देना व्यर्थ समझा और सोने लगी; किन्तु अपूर्व को नींद नहीं आई, तकिया ऊँचा किये उस के सहारे बैठा रहा।

रात्रि के अन्तिम पहर में सहसा चन्द्रमा दिखाई दिया, और उस की चांदनी बिस्तर पर आ कर फैल गई। अपूर्व ने उस रोशनी में मृगमयी के चेहरे की ओर देखा। देखते-देखते उसे ऐसा महसूस हुआ, कि रूप कथा की शहजादी को कोई चाँदी की छड़ी छुआ कर अचेत कर दिया हो। एक बार फिर सोने की छड़ी छुआते ही इस सोती हुई आत्मा को जगा कर उस से बदली का जा सकती है। चाँदी की छड़ी परिहास है और सोने की छड़ी कुन्दन।

भोर से पहले ही अपूर्व ने मृगमयी को जगा दिया, बोला,

"मृगमयी मेरे चलने का समय आ गया है। चलो, मैं तुम्हें तुम्हारी माँ के पास छोड़ आऊँ।"

मृगमयी विस्तर से उठ कर चलने के लिए तैयार हो गई। अपूर्व ने उस के दोनों हाथों को हाथों में लेकर कहा—"अब एक विनती और है मैंने कितने ही अवसरों पर तुम्हारी सहायता की है, आज परदेश जाते समय तुम मुझे उस का इनाम दे सकोगी।"

मृगमयी ने आश्चर्य के साथ पूछा—"क्या ?"

अपूर्व ने कहा—"स्वेच्छा से केवल एक चुम्बन देदो।,'

अपूर्व की इस अनोखी विनती और शान्त चेहरे को देख कर मृगमयी हँसने लग गई, और फिर बड़ी कठिनाई से उस हँसी को रोक कर चुम्बन देने के लिए आगे बढ़ी। अपूर्व के मुह के पास मुँह लेजा कर उस से न रहा गया, खिलखिला कर हँस पड़ी। इस प्रकार दो बार किया और अन्त में शान्त होकर आंचल से मुँह ढक कर हँसने लगी। जब कुछ न बन पड़ा तब अपूर्व ने डाँटने के बहाने उस के कान खींच लिए।

अपूर्व ने भी बड़ी भारी प्रतिज्ञा कर रखी थी कि वह जबरदस्ती से कभी भी मृगमयी से कुछ नहीं लेगा; क्यों कि इस में वह अपना अपमान समझता था। उस की इच्छा थी, कि देवताओं के समान सगौरव रहकर स्वेच्छा से भेंट किए हुए उपहार को पाये, और अपने हाथ से उठा कर कुछ भी न ले।

मृगमयी फिर न हँसी। अपूर्व उसे ऊषा की प्रथम किरणों में निर्जन पथ से उस की माँ के घर छोड़ आया और फिर लौट कर मां से बोला—"मां! बहुत सोच विचार कर इस निर्णय पर पहुँचा, कि बधू को कलकत्ता ले जाने से पढ़ाई में बहुत नुकसान होगा; और फिर उस की वहां कोई साथिन भी तो नहीं है···

तुम तो उस को अपने पास रखना नहीं चाहती। इसलिए मैं उसे उस के घर छोड़ आया हूँ।"

इस प्रकार गर्व के चूर्ण में ही मां पुत्र का विच्छेद हुआ।

: ७ :

मां के घर पहुंच कर मृगमयी को पता लगा कि, अब वहाँ उस का किसी प्रकार मन ही नहीं लगता है ? उस घर में न जाने कौन सा परिवर्तन आ गया है, कि समय काटे नहीं कटता। क्या करे, कहाँ जाय, किस से मिले, उस की कुछ भी समझ में नहीं आया ?

थोड़े ही दिनों में मृगमयी को कुछ ऐसा लगने लगा, कि घर बार और गाँव भर में कोई आदमी ही नहीं है ? अब कलकत्ता जाने को उस का मन इतना आतुर क्यों है, पहले ऐसा क्यों नहीं था ? यह उलझन उस की समझ में नहीं आई। उस ने वृक्ष के शुष्क पत्ते के समान ही डंठल से गिरे हुए उस अतीत जीवन को आज अपनी इच्छा से अनायास ही दूर फेंक दिया।

प्राचीन कथाओं में सुना जाता है कि पहले निपुण अस्त्र कार ऐसी बारीक खड्ग बना सकते थे, कि जिस से आदमी को काट कर दो टुकड़े कर देने पर भी उसे मालूम नहीं पड़ता था और जब उसे हिलाया जाता था तो उस के दो टुकड़े हो जाते थे। विधाता की खड्ग ऐसी ही सूक्ष्म है, कि कब उन्होंने मृगमयी के बचपन और जवानी के बीच वार किया, वह जान ही न सकी। आज न जाने कैसे तनिक हिल जाने से उस का बचपना

जवानी से अलग जा गिरा, और तब वह आश्चर्य चकित हो कर देखती ही रह गई।

मायके में, उस की वह चिर परिचित कोठरी उसे अपनी नहीं मालूम पड़ी। जो मृगमयी वहाँ काम करती थी, अब मालूम हुआ, कि यहाँ रही ही नहीं। अब उस के हृदय की सारी स्मृति एक दूसरे ही घर में, दूसरे ही कमरे में, दूसरी ही शय्या के आस-पास गूंजती हुई उड़ने लगी। मृगमयी अब बाहर नहीं दिखाई पड़ती, उस की हास्य ध्वनि अन्दर ही घुट कर रह जाती। उस का बचपन का साथी राखाल तो उसे देख कर त्रस्त हो भाग जाता, खेल कूद की बात तो अब उस के मन में ही नहीं आती।

मृगमयी ने अपनी मां से कहा—"मां, मुझे सास मां के घर ले चल।"

उधर कलकत्ता जाते समय बेटे की उदासीनता को याद कर के मां का हृदय विदीर्ण हो रहा था। क्रोध में आ कर बधू को वह अपनी ससुराल छोड़ आया, यह बात उस के मन में सुई की तरह चुभने लगी थी।

इतने में एक दिन अवगुंठन डाले मृगमयी आ पहुंची, चेहरा उस का मुरझा सा गया था और उस ने सास माँ के चरणों का स्पर्श किया। आशीष देने के स्थान पर सास मां की आंखों में अश्रु भर आये और उसी क्षण मृगमयी को उठा कर जलते हुए कलेजे से लगा लिया। उसी क्षण दोनों का मिलाप हो गया। मृगमयी के चेहरे की ओर निहार कर सास माँ को बड़ा आश्चर्य हुआ। अब वह पहली मृगमयी नहीं रही थी ऐसा परिवर्तन तो कतिपय सब के लिए सम्भव नहीं। ऐसे परिवर्तनों के लिए बड़ी ताकत की आवश्यकता होती है। सास माँ ने बहुत सोच समझ कर निश्चय किया था कि बधू के सारे दोषों को धीरे-धीरे

लेंगी, किन्तु यहाँ तो पहले से ही किसी विशेष सुधारक ने उसे नव जीवन दे डाला था ?

अब बधू ने सास माँ को अच्छी तरह पहचान लिया था; और सास माँ ने उसको। मृगमयी के हृदय में आषाढ़ माह के सजल मेघों के समान अश्रुओं से पूर्ण गर्व उमड़ने लगा। उस गर्व से उस की बड़ी-बड़ी आँखों की छायादार घनी पलकों पर और भी गहरा आवरण डाल दिया। वह मन ही मन अपूर्व से कहने लगी, मैं अब तक अपने को न समझ सकी तो न सही पर तुम ने मुझे क्यों नहीं समझने का प्रयत्न किया ? तुम ने मुझे दण्ड क्यों नहीं दिया ? तुम ने अपनी इच्छा के वशीभूत हो क्यों नहीं चलाया ? मुझ डाइन ने जब तुम्हारे साथ महानगरी चलने को इन्कार किया, तो तुम मुझे जबरदस्ती पकड़ कर क्यों नहीं ले गये ? तुमने मेरा कहना क्यों पूरा किया ? मेरे हट के आगे क्यों झुके ? मेरी अवज्ञा को क्यों सहन किया ?

इस के उपरान्त, फिर उसे उस दिन की याद आई, पहले पहल जिस दिन अपूर्व सवेरे तालाब के किनारे सुनसान रास्ते में उसे बन्दी बना कर मुँह से कुछ न कह कर केवल उस के मुख की ओर निहारता रहा था। उस दिन के उस तालाब की, उस पथ की वृक्ष के नीचे उस छाया की, भोर की उस सुनहली धूप की, हृदय भार से झुकी हुई उस गहरी चितवन की उसे स्मृति छा गई; और सहसा उस का पूरा-पूरा अर्थ अब उस की समझ में आगया था। इसके उपरान्त बिदा की वेला पर जिस चुम्बन को वह अपूर्व के ओष्ठों तक ले जाकर लौटा लाई थी वह अधूरा चुम्बन अब मरू मरीचिका की ओर तृषित मृग की तरह उत्तरोत्तर तीव्रता के साथ उस बीते हुए दिनों की ओर उड़ान भरने लगा किन्तु तृष्णा उस की किसी प्रकार भी न मिट सकी। अब रह-रह कर उस के मन में यही बातें उठा करती; यदि, उस समय तू

ऐसा करती, उन की बात का यदि ऐसा उत्तर देती, तब ऐसा करती···

अपूर्व के मस्तिष्क में इस बात का बड़ा दुख रहा, कि मृगमयी ने उसे अच्छी तरह पहचाना नहीं; और मृगमयी ने भी आज बैठे-बैठे यही सोचा, कि उन्होंने उसे क्या समझा होगा, क्या सोचते होंगे? अपूर्व ने उसे पाषाणी, चंचल, उद्दण्ड, नादान, लड़की समझ लिया होगा। लबालब भरे हुए तरलामृत की धारा से अपनी प्रेम तृष्णा मिटाने में उसे समर्थ नव यौवना नहीं जाना। इस वेदना से धिक्कार के मारे लज्जा के वह धरा में धँसी जा रही थी और प्रियतम के चुम्बन और सुहाग के उन ऋणों को वह अपूर्व के तकिये को दे दे कर उऋण होने का प्रयत्न करने लगी।

इसी प्रकार काफी दिन बीत गये।

चलते समय अपूर्व कह गया था, जब तक तुम्हारा पत्र नहीं आयेगा, तब तक मैं नहीं आऊँगा। मृगमयी इसी बात को याद कर, कमरे का द्वार बन्द कर, एक दिन पत्र लिखने के लिए बैठी। अपूर्व ने जो सुनहरी किनारों के कागज दिए थे उन्हें निकाल कर बैठी-बैठी विचारने लगी, क्या लिखे? बड़े यत्न के बाद हाथ जमा कर टेढ़ी-मेढ़ी रेखायें अंकित कर उंगलियों में स्याही पोत कर छोटे बड़े अक्षरों में ऊपर सम्बोधन बिना किए ही एक दम लिख दिया—'तुम मुझे चिट्ठी क्यों नहीं भेजते? तुम कौन हो? घर चले आओ और क्या होना चाहिए? वह सोच कर भी किसी निर्णय पर न पहुँच सकी? अन्त में उसने कुछ विचार कर लिखा—"अब मुझे चिठ्ठी लिखना और कैसे रहते हो सो लिखना; घर जल्दी आना सब अच्छी तरह हैं और कल हमारी काली गाय के बछड़ा हुआ है।" इतना लिखकर चिट्ठी लिफाफे में बन्द कर दी और फिर हृदय के प्यार से

सिंचित शब्दों में लिख दिया श्रीयुत अपूर्व कुमार राय। प्यार चाहे कितना ही उड़ेला गया हो, किन्तु तो भी रेखा सीधी, अक्षर सुन्दर और लिखावट सही नहीं हुई

लिफाफे पर नाम के सिवा और कुछ लिखना भी आवश्यक है, मृगमयी इस बात से परिचित न थी।

कहीं सास मां या कोई और न देख ले, इस भय से लिफाफे को विश्वस्त दासी के हाथ डाक में डलवा दिया।

कहने की आवश्यकता नहीं कि उस पत्र का कुछ फल नहीं निकला, और अपूर्व घर नहीं लौटा।

: ८ :

मां ने देखा, कि कालेज बन्द हो गया, फिर भी अपूर्व घर नहीं आया। सोचा, अब भी वह उन से गुस्सा है। मृगमयी ने भी समझ लिया, कि अपूर्व उस से गुस्सा कर रहा है; और तब वह अपने पत्र की याद कर के, मारे लज्जा के गड़गड़ जाने लगी। वह पत्र उस का कितना तुच्छ और छोटा था। उस में तो कोई बात ही नही लिखी गई, उस ने अपने मन के भाव तो उस में लिखे ही नहीं······फिर उन का ही क्या दोष ? यह सोच सोच कर वह तीर बिंधे शिकार की तरह भीतर ही भीतर तड़पने लगी। दासी से उस ने बारम्बार पूछा—"उस पत्र को तू डाक में डाल आई थी।" दासी ने उसे कितनी ही बार समझाया—"हां, बहू जी, मैं खुद चिट्ठी को डिब्बे में डाल आई हूं। बाबूजी को वह मिल भी गई होगी।"

अन्त में अपूर्व की मां ने मृगमयी को पास बुला कर पछा—

"बहू, वह बहुत दिनों से घर नहीं आया, मन चाहता है, कि कलकत्ता जाकर उसे देख आऊँ, क्या तुम साथ चलोगी ?"

मृगमयी जबान से कुछ न कह सकी ; परन्तु स्वीकृति रूप में सिर हिला दिया और अपने कमरे में जा कर, तकिये को छाती से लगा कर, इधर से उधर करवटें बदल कर, हृदय के आवेश को दबा कर हल्की होने का प्रयत्न करने लगी और इस के बाद भावी आशंका के विषय में सोच कर रोने लगी।

अपूर्व को सूचित किए बिना ही दोनों उस की शुभ कामना चाहती हुई कलकत्ता को चल दीं।

अपूर्व की मां कलकत्ते में अपने दामाद के यहां ठहरी। उस दिन संध्या को अपूर्व मृगमयी के पत्र की आस छोड़ कर और वचन को भंग कर के स्वयं ही पत्र लिखने के लिए बैठा था तभी उसे जीजा जी का पत्र मिला, कि तुम्हारी मां आई है। जल्दी आकर मिलो और रात का भोजन यहीं करना, समाचार सब ठीक है। इतना पढ़ने पर भी उस का मन किसी अमंगल सूचना की आशंका कर घबड़ा उठा। वह तुरन्त ही कपड़े बदल, जीजा जी के घर की ओर चल दिया। मिलते ही उसने मां से पूछा—"मां, सब मंगल तो है।"

मां ने कहा—"सब देवी की कृपा है। छुट्टियों में तू घर क्यों नहीं आया, इसीलिए मैं तुझे लेने आई हूं ?"

अपूर्व ने कहा—"मेरे लिए इतनी तकलीफ उठाने की क्या जरूरत थी मां। मैं तो कानून की परीक्षा के कारण······"

ब्यालू करते समय दीदी ने पूछा—"भइया ! उस समय भाभी को तुम साथ ही क्यों नहीं लेते आये ?"

भइया ने गम्भीरता के साथ कहा—"कानून की पढ़ाई थी दीदी।" जीजा ने हँस कर कहा—"यह सब तो बहाना है, असल में हमारे डर से लाने की हिम्मत नहीं पड़ी।"

दीदी बोली—"बड़े डरपोक निकले भइया। कहीं इस डर से बुखार तो नहीं चढ़ा।"

इस तरह हँसी मजाक चलने लगा, परन्तु अपूर्व वैसे ही उदासीन बना रहा। कोई भी बात उसे अच्छी नहीं लग रही थी ? वह सोच रहा था। मां जब कलकत्ते आई, तो मृगमयी भी चाहती तो वह भी कलकत्ते आ सकती थी पाषाणी कहीं की। इस प्रकार सोचते २ उसे सारा मानव जीवन व्यर्थ सा प्रतीत होने लगा।

व्यालू के बाद बड़ी जोर की आंधी आई; और बहुत तेज वर्षा होने लगी। दीदी ने कहा—"भइया आज यहीं रह जाओ।"

अपूर्व ने कहा—"नहीं दीदी, मुझे जाना ही होगा, बहुत सा काम पड़ा है।"

जीजा ने कहा—"ऐसी रात में तुम्हें क्या काम है ? एक रात को ठहर ही जाओगे तो कौन सा काम बिगड़ जायेगा ?"

बहुत कहने सुनने के उपरान्त अनिच्छा से अपूर्व को उस रात दीदी के पास ठहरना पड़ा।

राजी हो जाने पर दीदी ने कहा—"भइया, तुम थके हुए दिखाई देते हो, अब चल कर आराम कर लो।"

अपूर्व की यही इच्छा थी, कि शय्या पर अंधेरे में अकेला जा कर सो रहे तो उस की जान बचे। बातें करना भी तो उसे बुरा लगता था।

सोने के लिए जिस कमरे के द्वार तक उसे पहुंचाया गया, वहाँ जाकर देखा, कि भीतर अन्धकार छाया हुआ था। दीदी ने कहा—"डरो मत भइया, हवा से बत्ती बुझ गई मालूम देती है, दूसरी बत्ती लिए आती हूँ।"

अपूर्व ने कहा—"नहीं दीदी, अब उसकी आवश्यकता नहीं है। मुझे अंधेरे में ही सोने की आदत है।

दीदी के चले जाने पर अपूर्व अंधकार से भरे कमरे में सावधानी के साथ शय्या की ओर बढ़ा।

शय्या पर बैठना ही चाहता था, कि इतने में चूड़ियों के खनकने की आवाज सुनाई दी और कोमल बाहुपाश में वह बुरी तरह जकड़ा गया। उन्हीं क्षणों पुष्प से कोमल व्याकुल ओष्ठों ने डाकू के समान आ कर, अविरल अश्रुधारा के भीगे हुए चुम्बनों के मारे उसे आश्चर्य प्रगट करने तक का अवसर न दिया।

अपूर्व पहले तो चौंक पड़ा। इस के बाद उस की समझ में आया, कि जो काम वह पाषाणी को मनाने के लिए अधूरा छोड़ आया था, उसे आज अश्रुओं के वेग ने पूर्ण कर दिया है।

—:o:—

भाई-भाई

दुम्मी छदामी कोरी दोनों भाई भोर होते ही, जब हँसियां गंडासा हाथ में पकड़े काम पर निकले, तब उन दोनों की घर-वालियों में खूब जोर की जंग शुरू हो गई थी । आस-पास के लोग कुदरत और अनेक प्रकार की खटपट और शोर की भांति इस घर के झगड़े और उस से पैदा हुए कोलाहल के आदि बन गये थे । जोर की चीख पुकार और औरतों की गाली गलौज कान में पड़ते ही लोग आपस में कहने लगते, "लो, हो गई शुरू !" यानी, जैसी की आशा थी, आज भी उस कुदरती सिद्धान्त में कोई अंतर नहीं पड़ा । भोर होते ही पूरब में दिवाकर के उदय होने पर जैसे कोई उस का कारण पूछने की धृष्टता नहीं करता, ठीक वैसे ही कोरियों के इस घर में जब दोनों गृहणियों में जंग और गाली गलौच शुरू हो जाती, तो फिर उस का कारण जानने के लिए आस-पास के किसी भी व्यक्ति को किंचित मात्र भी आश्चर्य नहीं होता ?

हाँ, इतना अवश्य है कि यह कलह या रोज रोज का झगड़ा आस पास के लोगों के निस्बत दोनों भाइयों को बहुत परेशान करता है; इस पर भी वे इसे विशेष परेशानियों में नहीं गिनते । उन के मानसिक भाव ऐसे हैं, मानों दोनों भाई विश्व यात्रा का लम्बा सफर किसी इक्के में बैठ कर काट रहे हैं, और उस के दोनों बिना कमानी के पहियों के निरन्तर घड़-घड़ शब्द को उन्होंने जीवन यात्रा के विधि विहित सिद्धान्तों में ही मिला लिया

है। अपितु घर में जिस दिन कोई शोर गुल नहीं होता, चारों ओर नीरवता सी छाई रहती है। उस दिन किस प्रकार की मुसीबत आजाये, इस बात का कोई अनुमान भी नहीं कर सकता ?

हमारी कहानी का कथानक जिस दिन से आरम्भ होता है, उस दिन संध्या को दोनों भाई मेहनत मजूरी कर के, थके माँदे जब घर लौटे तो देखा, कि घर में सन्नाटे का साम्राज्य है।

बाहर काफी गर्मी है। दुपहरिया भर खूब जोर की वर्षा हुई है; और अब भी मेघ गरज रहे हैं। हवा का चिन्ह तक भी नहीं। वर्षा से घर के चारों ओर का जंगल और घास आदि बहुत ऊँचे ऊँचे हो गये हैं; वहाँ से पानी में डूबे हुए पटसन के खेत में से दुर्गन्ध सी निकल रही है; और उस ने चारों ओर मानो एक चार दीवारी सी खड़ी कर दी है। गुहाल के पास वाली छोटी सी तलैया में मेंढक टर्रा रहे हैं और संध्या का निस्तब्ध गगन मानों झींगुरों की अन्धकार से बिल्कुल पूर्ण सा होगया है।

समीप में बरसाती नदी पद्मा नये-नये बादलों से फिर कर और भयानक रूप धारण कर के आजादी का रसास्वादन कर रही है। अधिकांश खेती को डुबो कर बस्ती की ओर मुँह बाये बढ़ रही है। यहां तक कि उसने आस-पास के दो चार आम, कटहल के वृक्षों को उखाड़ कर धरा पर लिटा दिया है और उन की जड़ें उस के पानी में से झलक रही हैं। मानो वे अपनी अंगुलियों को गगन में फैला कर किसी अंतिम अवलम्ब को पकड़ने का प्रयत्न कर रही हों।

दुम्सी और छदामी, उस दिन गांव के जमींदार के यहां बेगार में गये थे। उस पार की रेती पर धान पक गये हैं। वर्षा के पूर्व ही धान काट लेने के लिए देश के निर्धन किसान और मज-

दूर सब कोई अपने २ खेतों के काम पर पटसन काटने में लग गये हैं। केवल इन दोनों कोरियों को जमींदार के कारिन्दे जबरदस्ती बेगारी में पकड़ कर ले गये थे । जमींदार की कचेहरी के छप्परों में से पानी टपक रहा था । उस की मरम्मत के लिए और कुछ टट्टियां बनाने के लिए वे दोनों सारा दिन परिश्रम करते रहे हैं। दो टूक पेट में डालने तक का मौका नहीं मिला; कचेहरी की ओर से थोड़े से चने खाने को मिल गये थे। इस के अलावा हक की मजूरी मिलनी तो दूर की बात, वहां उन्हें गालियां और फटकार ही मिलीं, वे उन की मजूरी से कहीं अधिक ज्यादा थी।

कीच गारे में से किसी प्रकार निकल और पानी में हो कर बड़ी मुश्किल से दोनों भाई संध्या समय घर पहुँचे ? देखा तो, छोटी बहू चन्दा छाती पर आंचल बिछाये चुपचाप औंधी पड़ी है । सावन की बदली की तरह उस ने भी दिन भर अश्रु बहा कर आखों को हलका किया है और अब शान्त हो कर हृदय को खूब गरम कर रखा है। और, बड़ी बहू अपना मुँह फुलाये द्वार पर बैठी थी, उस का डेढ़ साल का बच्चा बिलख रहा था। दोनों भाइयों ने जब घर में पैर रखा तो देखा, कि बच्चा नंग धड़ंग चौंक में एक ओर औंधा पड़ा सो रहा है।

भूख से व्याकुल दम्मो ने घुसते ही कहा—"उठ, परोस खाने को।" बड़ी बहू राम्रा एक साथ जोर से जाग उठी, मानो कागज के ढेर में कोई चिन्गारी पड़ गई हो. बोली—"खाने को है क्या, जो परोस दूँ ? चावल तू दे गया था; मैं क्या खुद जा कर कमा लाती।"

सारे दिन की थकान और डांट फटकार सहने के बाद निराहार निरानन्द अंधेरे में, जलती हुई जेठाग्नि पर घरवाली के रूखे शब्द, विशेष कर आखिरी वाक्य का छिपा हुआ बुराश्तोष

दम्मी को सहसा न जाने कैसे सहन न हुआ ? क्रोधित सिंह की तरह वह चिल्ला कर बोला—"क्या कहा ?"

इतना कह कर उसी क्षण हंसिया उठा कर घरवाली के सिर पर दे मारा । राधा अपनी देवरानी के पास जा कर गिर पड़ी और वहीं पर दम तोड़ दिया ।

चन्दा के वस्त्र खून से लथपथ हो गये; वह हाय अम्मा, क्या हो गया, कह कर क्रन्दन कर उठी । छदामी ने आगे बढ़ कर उस का मुँह दाब लिया । दम्मी हंसिया फेंक कर गाल पर हाथ रखे भौंचक्के की तरह पृथ्वी पर बैठ गया । बेटा जग गया और भय के मारे चिल्ला २ कर रोने लगा ।

बाहर का वातावरण तब तक पूर्ण रूप से शान्त था । अहीरों के बालक गाय-भैंस चरा कर गांव को लौट रहे थे । उस पार की रेती पर जो लोग धान काटने गये थे । वे पांच-पांच सात-सात की टोली में एक छोटी सी नाव पर बैठ कर, इस पार आ कर अपनी मेहनत मजूरी में दो चार पूला धान का सिर पर लादे अपने २ घर जा पहुंचे थे ।

गांव के रामलोचन चाचा डाकखाने में पत्र डाल कर घर लौट आये थे और सब कामों से निबट कर चुपचाप बैठे तम्बाकू का मजा ले रहे थे । एकाएक उन्हें याद आया कि उनके शिकमी किसान दम्मी पर लगान के कुछ रुपये बाकी हैं; आज के दिन वह देने का वायदा कर गया था । यह सोच कर, कि अब वह काम से लौट आया होगा, रामलोचन कंधे पर दुपट्टा डाल कर और हाथ में छतरी ले उस के घर की ओर चल दिए ।

दम्मी और छदामी के घर में घुसते ही उन के रोंगटे खड़े हो गये । देखा तो, घर में दिया तक नहीं जल रहा था । आंगन अंधेरे से भरा हुआ था और उस अंधेरे में दो चार काली छाया

सी अस्पष्ट रूप में दिखाई दे रही थीं। रह-रह कर बरामदे में से किसी के रोने की आवाज़ आ रही थी और कोई उसे रोकने का प्रयत्न कर रहा था ?

रामलोचन ने तनिक सरमाते हुए पूछा—"दम्मी है क्या ?"

दम्मी अब तक पाषाण प्रतिमा के समान चुपचाप बैठा था। अपना नाम सुनते ही वह सिसक-सिसक कर अबोध बालक की तरह रोने लगा। छदामी झटपट बरामदे में से उतर कर राम लोचन चाचा के पास आंगन में आ खड़ा हुआ। रामलोचन ने पूछा—"औरतें कलह कर के मुँह फुलाये पड़ी होंगी, इसी से अंधेरा है, क्यों ? आज तो दिन भर चिल्लाती ही रही है।"

छदामी अभी तक क्या करना चाहिये, इस निर्णय पर नहीं पहुँच पाया था। अनेक प्रकार की असम्भव कल्पनाएँ उस के मस्तिष्क में चक्कर काट रही थीं। अभी तक वह इसी निश्चय पर पहुँचा था कि कुछ रात बीते लाश को कहीं गायब कर देगा। इसी बीच में चौधरी चाचा आन टपके, जिस की उसे स्वप्न में भी आशा न थी। तुरन्त ही उसे कोई जवाब न सूझा, कह बैठा—"हां, आज बहुत झगड़ा हो गया।"

चौधरी रामलोचन बरामदे की ओर बढ़ते हुए बोले—"इस के लिए दम्मी क्यों आंसू बहा रहा है ?"

छदामी ने देखा कि अब बचने की कोई आशा नहीं तो कह उठा—"लड़ते-लड़ते छोटी बहू ने बड़ी बहू के माथे पर हँसिया मार दिया है।"

इन्सान आई हुई मुसीबत को ही बड़ा समझता है, उस के अलावा और भी कोई मुसीबत आ सकती है—यह बात शीघ्र ही उस के दिमाग नहीं घुस पाती। छदामी उस समय इसी

सोच में पड़ा हुआ था कि इस भयानक सचाई के पंजे से कैसे छुटकारा मिले ? लेकिन झूठ उस से भी बढ़ कर मुसीबत खड़ी कर सकता है, इस बात का उसे तनिक भी ध्यान न था। रामलोचन के पूछते ही तुरन्त ही उस के दिमाग में जो उत्तर सूझा वही उस ने कह डाला। रामलोचन ने चौंक कर पूछा—"ऐं क्या कहा ! मरी तो नहीं ?"

छदामी ने उत्तर दिया—"मर गई !" इतना कह कर उन के पाँव पर गिर पड़ा।

चौधरी महाशय बड़े असमंजस में फँस गये। सोचा कि भगवान ने न जाने संध्या समय कौन सी मुसीबत में फँसा दिया ? कचेहरी में गवाही देते-देते प्राण खुश्क हो जायेंगे। छदामी ने किसी प्रकार भी उन के चरणों को नहीं छोड़ा, बोला—"चौधरी चाचा अब मैं बहू के बचाने के लिए क्या करूँ ?"

अभियोगों के विषय में परामर्श देने में चौधरी रामलोचन गांव भर के प्रधान मंत्री थे। उन्होंने तनिक विचार कर कहा—"देख एक काम कर तू; अभी दौड़ जा थाने में, कहना कि मेरे बड़े भाई दुखी ने शाम पीछे घर आ कर खाने को मांगा था। खाना तैयार नहीं था, सो उस ने अपनी बहू के माथे पर हँसिया मार दिया है। मैं ठीक बता रहा हूं ऐसा करने से तेरी बहू बच जायेगी।"

छदामी का कण्ठ सूखने लगा, उठ कर बोला—"चौधरी चाचा; बहू तो और मिल जायेगी; लेकिन भाई के फाँसी हो जाने पर फिर भाई नहीं मिल सकेगा। जब उस ने अपनी घर वाली के माथे पर दोष मढ़ा था तब उस ने यह बातें नहीं सोची थीं। भय के कारण एक बात मुँह से निकल गई; अब अलक्षित विचारों से उसका मन अपने लिए युक्तियाँ एकत्रित करने लगा।

चौधरी ने भी उस की बात को युक्ति संगत माना, बोले—"तब फिर जैसा हुआ है वैसा ही कहना; सब ओर से बचाव होता तो बहुत कठिन है छदामी।" इतना कह कर चौधरी रामलोचन वहाँ से चल दिए और देखते सारे गाँव में इस बात की चर्चा हो गई, कि कोरियों के घर की छोटी बहू ने गुस्से में बड़ी बहू के माथे में हँसिया दे मारा है।

बांध टूटने पर जैसे ही बाढ़ आ जाती है उसी प्रकार कोरियों के घर पुलिस आ धमकी। अपराधी और निरपराधी उन्हें देख कर घबड़ा उठे।

: २ :

छदामी ने निर्णय किया, कि जिस राह को अपनाया है उसे उसी पर चलना ठीक होगा; क्योंकि उसने चौधरी चाचा के सामने जो बात कह डाली है उसे गाँव का बच्चा-बच्चा जान गया है। अब यदि और कोई बात कही जाये तो न जाने उस का नतीजा क्या निकले ?

उस की बुद्धि मारी गई। उस ने अपनी बहू से अनुरोध किया, कि वह इस बात को अपने ऊपर ले ले। सुनते ही उस पर मानो ज्वालामुखी पहाड़ फट पड़ा। उस ने धीरज बंधाते हुए कहा—"अरी पगली! ऐसा करने में किसी बात का डर नहीं है, हम लोग तुझे जरूर बचा लेंगे।" धीरज बंधा तो सही, पर उस का गला सूख गया और चेहरे का रंग पीला पड़ गया।

चन्दा की आयु सत्रह अठारह वर्ष के लगभग होगी चेहरा भरा हुआ और गोल मटोल, बदन मंझोला और गठा हुआ

अंग प्रत्यंग सौष्ठव से परिपूर्ण, चाल अति सुन्दर आस पास के लोगों के घर जा कर गप शप करना उस की दिनचर्या है और बगल में पानी की गागर लिए पनघट जाते समय वह दो अगुलियों से अवगुण्ठन में तनिक सा छिद्र कर के चमकीली चंचल काली आँखों से सहम जो कुछ देखने लायक वस्तु होती है, उसे देख लिया करती है।

बड़ी बहू ठीक इस से उल्टी थी, आलसिन, फूहड़ और बेशऊर सिर का कपड़ा, गोद का बच्चा, घर का काम कुछ भी उस से न सम्भलता था। हाथ में न तो कोई खास काम काज होता और न फुरसत। छोटी बहू उस से अधिक कुछ कहती सुनती न थी हाँ मीठे स्वर में दो एक पैने दाँत गड़ा देती, और हाय हाय ही-ही कर के क्रोध में बकती झकती रहती ; और इस प्रकार मुह लले भर की नाक में दम करती रहती।

पर इन दो गृहस्थियों में भी स्वभाव की आश्चर्य जनक एकता थी। दम्मी देह में कुछ लम्बा चौड़ा हट्टा-कट्टा है, चौड़ी हड्डियाँ भद्दी नासिका, दुनिया से अनभिज्ञ आँखें। ऐसा भोला भाला किन्तु भयानक आदमी कोई बिरला ही होगा।

और छदामी ऐसा लगता था जैसे किसी काले पत्थर को बड़ी मेहनत से कोंद कर कोई प्रतिमा तैयार की गई हो।

तनिक भी कहीं बाहुल्य एवं समानता नहीं, उस का प्रत्येक अंग स्थूल एवं शक्ति से परिपूर्ण था। चाहे तो ऊँची से ऊँची चट्टान से नीचे कूद पड़े, चाहे किसी पेड़ की टहनियों को एक दम खाक कर दे। हरेक कार्य में उसके चातुर्य की स्पष्ट झलक दिखाई देती थी। वह बड़े-बड़े काले बालों को तेल में डुबो बड़े जतन से कंधे तक लटकाये रहता था···इससे स्पष्ट था कि वह अपनी देह की सजावट में विशेष ध्यान रखता है।

और-और ग्रामवासियों के सौंदर्य की ओर से वास्तव में वह उदासीन न था, फिर भी वह अपनी घरवाली को बहुत चाहता था। दोनों में झगड़ा भी होता और मेल-जोल भी; कोई किसी को हरा नहीं पाता था? दोनों ही अनेक दावों को खेलते हुए जीवन की डगर आगे बढ़े चले जा रहे थे।

इस दुर्घटना के कई दिन पहले से दम्पत्ति में बहुत अधिक तनातनी चल रही थी। बात यह थी, कि चन्दा ने देखा कि उस का घरवाला काम के बहाने कभी-कभी दूर चला जाता है, यहाँ तक कि दो एक दिन बाहर बिता कर घर लौटता है और कुछ कमा-धमा कर लाता नहीं। उस के बुरे लक्षणों के कारण वह उस पर कड़ी नजर रखने लगी और ज्यादती भी करने लगी। उस ने भी पनघट पर चक्कर काट ने शुरू कर दिए और मौहल्ले भर में अच्छी तरह घूम फिर कर घर आ कर काशी प्रसाद के मंझले बेटे की बहुत प्रशंसा करने लगी।

इस से परिणाम यह निकला, कि छदामी के दिन और रातों में मानो किसी ने विष घोल दिया? काम-धन्धे में उसे पल-भर के लिए चैन नहीं पड़ता। इस के लिए उस ने एक बार भाभी को खूब डाँटा फटकारा। जबाब में भाभी ने खूब हाथ हिला कर, झमक-झमक कर उसके स्वर्गीय बाप को सम्बोधन करके कहना शुरू कर दिया—"वह औरत आंधी के आगे आगे भागती है, उसे मैं सम्हालूँ। मैं तो सब कुछ समझती हूँ, किसी दिन खान्दान की आबरू मिट्टी में मिला देगी?"

बगल के कोठे में चन्दा बैठी थी उस ने बाहर आकर धीमे स्वर में कहा—"दीदी, तुम्हें इतना डर क्यों है? बस फिर क्या था, दोनों में महाभारत छिड़ गई।

छदामी ने गुर्रा कर कहा—"देख, अब की अगर सुना,

कि तू अकेली पनघट पर गई है तो तेरी हड्डी पसली एक कर दूँगा।'

चन्दा ने भभक कर कहा—"तब तो मेरा कलेजा ही ठंडा हो जाएगा।" और कहती हुई वह बाहर जाने को तैयार हो गई।

छदामी ने उस की चुटिया घसीट कर उसे कोठे के भीतर धकेल दिया और बाहर से दरवाजे में ताला डाल दिया।

संध्या समय जब छदामी घर लौटा तो देखा, कि कोठा खुला पड़ा है, उस में कोई भी नहीं है। चंदा तीन गाँव लाँघ कर सीधी अपनी नानी के घर पहुँच गई है।

छदामी बड़ी मुश्किल से घरवाली को मना कर वहाँ से घर वापिस ले आया और अब की बार उस ने हार मान ली और फिर उस ने किसी प्रकार की उस से जबरदस्ती नहीं की; लेकिन उस का मन अशान्त रहने लगा। घर वाली के प्रति शंका के भाव उस के हृदय में शूल बन कर गढ़ने लगे और जब कभी वह उस की तीव्र पीड़ा से अधिक बेचैन हो जाता तो उस की इच्छा होती कि काश, यह मर जाये तो पिण्ड छूटे। इंसान से इंसान को जितनी ईर्ष्या या जलन होती है उतनी सम्भवतः यमराज को भी नहीं।

इसी बीच घर में यह दुर्घटना घट गई।

चन्दा से जब उस के घरवाले ने हत्या का दोष ले लेने के लिए कहा तो वह भोंचक्की हो कर देखती रह गई, उस की कजरारी आँखें अग्नि के समान छदामी को जलाने लगीं। उस का सारा शरीर और मन संकुचित हो कर इस राक्षस के पंजे से निकल कर भागने का प्रयत्न करने लगा। उस की अन्तरात्मा विमुख होकर अपने ही घर वाले के प्रति विद्रोह कर बैठी।

छदामी ने बहुतेरा उस का ढाढस बंधाया कि तेरे डरने की

कोई बात नहीं है। इस के बाद उस ने थाने में और अदालत में जज के सामने उसे क्या कहना होगा, बार-बार सिखा पढ़ा कर सब ठीक ठाक कर दिया ; लेकिन चन्दा ने लम्बा चौड़ा उस का व्याख्यान बिल्कुल भी नहीं सुना, वह पाषाण प्रतिमा के समान वहाँ चुपचाप बैठी रही।

सभी कामों में दम्भी छदामी के भरोसे रहता है। छदामी ने जब चन्दा पर सारा दोष गढ़ने की बात कही, तो दम्मी ने पूछा—"फिर बहू का क्या होगा ?"

छदामी ने कहा—"उसे मैं बचा लूंगा।"

भाई की बात सुनकर हा हा कहा दम्मी निश्चित हो गया।

छदामी ने चन्दा को सिखा दिया था कि तू कहना दीदी मुझे हंसिया ले कर मार ने आई थी, सो मैं भी हंसिया ले उसे रोकने लगी, अचानक वह उस के लग गया। ये सब बातें चौधरी रामलोचन की बनाई हुई थी। इन के अनुकूल जिन जिन बातों और सबूतों की आवश्यकता थी, वे सब बातें भी उन्होंने विस्तार से छदामी को समझा दी थीं।

पुलिस ने आ कर जोरों से तहकीकात करनी शुरू कर दी। लगभग सभी आस-पास के लोगों के मन में यह बात घर कर गई थी, कि चन्दा ने ही जिठानी की हत्या की है। सभी गांव वालों के बयानों से ऐसा ही सिद्ध हुआ। पुलिस की ओर से चन्दा से जब पूछा गया तो उस ने कहा—"हाँ, मैंने ही खून किया है।"

"क्यों खून किया ?"

"मुझ से वह डाह रखती थी।"

"कोई झगड़ा हुआ था ?"

"नहीं।"

"वह तुम्हें पहले मारने आई थी ?"

"नहीं।"

"तुम पर किसी किस्म का अत्याचार किया था ?"

"नहीं।"

इस प्रकार का उत्तर सुन कर सब देखते रह गये।

छदामी एक दम घबड़ा गया, बोला—"यह ठीक नहीं कह रही है। पहले बड़ी बहू……"

थानेदार ने उसे डांट कर चुप कर दिया। अन्त तक अनेक बार जिरह करने पर भी वही एक प्रकार का उत्तर मिला। बड़ी बहू की ओर से किसी प्रकार का हमला होना चन्दा ने किसी प्रकार भी स्वीकार नहीं किया ?

ऐसी जिद्दी औरत शायद ही कहीं देखने में आती हो। वह तो जी जान से कोशिश कर के फाँसी के तख्ते की ओर झुकी जा रही है, किसी भी तरह रोके नहीं रुकती ? यह कैसा रूठना है ? चन्दा शायद मन ही मन कह रही थी, कि मैं तुम्हें छोड़ कर अपनी इस जवानी को लेकर फाँसी के तख्ते पर चढ़ जाऊँगी, फाँसी की रस्सी को गले लगाऊँगी, मेरे इस जन्म का आखिरी बन्धन उसी के साथ है।

बन्दिनी हो कर चन्दा, फिर परिचित गांव के रास्ते से, जगन्नाथ जी के शिवालय के पास से, बीच बाजार से, घाट के तट से, मजूमदारों के घर के सामने से, डाकखाना और स्कूल के बगल से, सभी परिचित लोगों की आंखों के सामने से कलंक का दाग माथे पर लगा कर सदैव के लिए घर छोड़ कर चली गई। गांव के बालकों का एक झुण्ड पीछे पीछे चला जा रहा था; और गांव की औरतें, उस की सखी सहेलियां, कोई घूंघट की संध में से, कोई दरवाजे की बगल में से और कोई वृक्ष की ओट में से

सिपाहियों से घिरी चन्दा को जाती देख लज्जा से, घृणा से, और भय से रोमांचित हो उठीं।

डिप्टी मजिस्ट्रेट के सामने भी चन्दा ने अपना ही दोष स्वीकार किया और दुर्घटना से पहले बड़ी बहू ने उस पर किसी प्रकार की ज्यादती या जुल्म किया था ? यह बात उस के मुँह से किसी भी प्रकार निकली ही नहीं ?

पर छदामी उस दिन गवाह के कचहरी पहुँचते ही रो दिया; और हाथ जोड़ कर बोला—"दुहाई है हजूर, मेरी बहू का कोई कसूर नही ?" हाकिम ने रोबीले स्वर में उसे रोक कर प्रश्न पर प्रश्न करना शुरु किया। उस ने एक एक कर के सारी की सारी कच्ची वारदात कह सुनाई।

पर हाकिम ने उस की बात का विश्वास नहीं किया। कारण, गांव के चौधरी रामलोचन ने गवाह रूप में कहा—"खून होने के थोड़ी देर बाद मैं इन के घर पहुँचा था। गवाह छदामी ने सब बातें कबूल कर के मेरे पैरों में गिर कर कहा था, कि बहू को किस प्रकार बचाऊँ, कोई सलाह दीजिए ? गवाह ने मुझ से कहा कि मैं यदि कहूँ कि मेरे बड़े भाई ने खाने को मांगा था, सो उसने दिया नहीं, इस पर गुस्से में आ कर भाई ने अपनी घरवाली पर हंसिया का वार किया, जिस से उसने उसी समय दम तोड़ दिया, तो वह बच जायेगी।" मैंने कहा—"खबरदार हराम-जादे, अदालत में एक कथन भी झूठ का न बोलना, इस से बढ़ कर महा पाप और नहीं है······"

रामलोचन ने पहले चन्दा को बचाने के लिए बहुत सी बातें बना ली थीं; किन्तु जब देखा, कि चन्दा खुद ही अड़ कर फंस रही है, तब सोचा कि कहीं मुझे ही झूठे जुल्म की गवाही में न फंसना पड़े। इस से जितना जानता हूँ उतना ही कहना अच्छा

है। यह सोच कर उन्होंने उतना ही कहा और उस कहने में किसी प्रकार की कोई कसर उठा कर न रखी ?

डिप्टी मजिस्ट्रेट ने इस केस को सेशन के सुपुर्द कर दिया।

इस बीच में खेतीबारी, हाठ बाजार, रोना-हँसना आदि संसार के सभी काम चलने लगे। पहले के समान सारे धान के खेतों में सावन के मेघ बरस उठे।

पुलिस मुलजिम और गवाहों को लेकर सेशन जज की अदालत में पहुंची। इजलास लगा हुआ था। बहुत से लोग अपने २ मुकद्मे की पेशी की इन्तजारी में बैठे थे। कोई मुकद्मा चल रहा था। छदामी ने खिड़की में से झांक कर रोजमर्रा की इस आकुल व्याकुल दुनिया को एक नजर से देखा। सब कुछ उसे सपना मालूम हुआ। अदालत के अहाते के भीतर के बट वृत्त पर से एक कोयल कूक उठी।

अपनी पेशी पर चन्दा ने झुझंला कर जज के सामने कहा—"अरे साहब, एक ही बात को बार २ कितनी बार बताऊँ ?"

जज ने उसे समझाते हुए पूछा—"तुम जिस दोष को अपने सिर पर ले रही हो, उसकी सज़ा जानती हो, क्या है ?"

चन्दा ने कहा—"नहीं।"

जज ने मुस्कराते हुए कहा—"फांसी यानी मौत।"

उसे सुनते ही चन्दा के होश उड़ गये। उसने गिड़गिड़ाते हुए कहा—"साहब, आपके पैरों पड़ती हूं, मुझे यही सजा दो; मुझ से अब दुनिया की बातें सही नहीं जातीं।"

जब छदामी को अदालत में पेश किया गया तो चन्दा ने उसकी ओर से मुंह फेर लिया।

जज ने पूछा—"गवाह की ओर देखकर बताओ, यह तुम्हारा कौन लगता है ?"

चन्दा ने अपने मुंह को हाथों से ढक कर कहा—"यह मेरा घरवाला है साहब।"

जज—"तुम्हें यह चाहता है ?"

चन्दा—"बहुत ज्यादा हजूर।"

जज—"तुम उसे नहीं चाहतीं क्या ?"

चन्दा—"बहुत ज्यादा चाहती हूँ हजूर।"

तभी छदामी ने बीच में ही कहा—"हजूर खून तो मैंने किया है।"

जज ने प्रश्न किया—"क्यों ?"

छदामी ने कहा—"खाने को मांगा था, सो उसने दिया नहीं।" दम्मी जब गवाही देने आया बेहोश होकर गिर पड़ा।

होश आने पर उसने कहा—"हजूर ! खून तो मैंने किया है।"

"क्यों ?"

"खाने को मांगा था, सो उसने दिया ही नहीं।"

बहुत जिरह और गवाहों के बयान के बाद जज ने साफ साफ समझ लिया कि घर की बहू को फाँसी से बचाने के लिए दोनों भाई कसूर मंजूर कर रहे हैं; लेकिन चन्दा थाने से लेकर सेशन अदालत तक एक ही बराबर बात कहती आ रही थी। उसकी बात में तनिक भी कहीं अन्तर नहीं पड़ा। दो वकीलों ने स्वत प्रवृत हो कर उसे फाँसी के फंदे से बचाने का बहुत प्रयत्न किया; लेकिन अन्त में हार माननी पड़ी।

जिस दिन तनिक सी आयु में एक काली २ छोटी-मोटी लड़की अपना गोल-मोल चेहरा लिए, गुड्डा-गुड़िया फेंक कर अपने माता-पिता का संग छोड़ कर ससुराल आई थी। उस दिन रात को शुभ लग्न के वक्त आज दिन की कौन सोच सकता

था ? उस के पिता ने अन्तिम समय में यह कहा था कि खैर, कुछ भी हो मेरी लड़की तो ठीक ठिकाने से लग गई ।

फाँसी से पूर्व, जेलखाने में सिविल सर्जन ने चन्दा से पूछा—"किसी को देखने की इच्छा हो तो बोलो ?"

चन्दा ने उत्तर दिया—"बस एक बार अपनी माँ को देखना चाहती हूँ ।"

सिविल सर्जन ने पुनः कहा—"तुम्हारा घरवाला तुम्हें मिलना चाहता है उसे बुलवा लिया जाये ।

चन्दा ने उद्विग्न होकर कहा—"उहूँ हूँ, मौत भी नहीं आई ।"

—:०:—

कंचन

मैं विदेश से लौट कर छोटा नागपुर के एक चन्द्र वंशीय राजा के दरबार में नौकरी करने लगा। उन्हीं दिनों मेरी देश-व्यापी कीर्ति के पटल पर अचानक एक छोटी सी कहानी खिल उठी। उन दिनों गगन टेसू की रक्तिमाभा से विभोर था। शाल वृक्ष की टहनियों पर मंजरियाँ झूल रही थीं। मधु मक्खियों के समूह मंडराते फिर रहे थे। व्यापारी लोगों का लाख संग्रह का समय आ गया था। बेर और शहतूत के पत्तों से रेशम के कीड़े इकट्ठे किए जा रहे थे। संथाल जाति महुए बीनती हुई फिर रही थी। नूपुर की झंकार के समान गूंजती हुई नदी वहीं पर बही जा रही थी। मैंने स्नेह से उस नदी का नाम रखा था—'तनिका'।

उस समय का वातावरण अनोखे आवेश से परिपूर्ण था। उस का मेरे मन पर भी अधिकार हो गया था। जिस से कार्य की गति मंथर पड़ गई थी। तब मैं अपने पर ही खीझ उठा था।

दिन ढल रहा था। एक स्थान पर दोआबा बनाती हुई नदी दो शाखाओं में विभक्त होकर चली गई है। उसी बालू के टीले पर बगुलों की पंक्ति शान्त बैठी थी। अपनी झोली में रंग बिरंगे पत्थरों को भरे मैं कोठी को लौट रहा था। यह सोच कर कि अपनी विज्ञान-शाला में इन की परीक्षा करूंगा। निर्जन बन

में अकेले आदमी का समय काटना कठिन सा हो जाता है। अतः मैंने संध्या के बाद का समय प्रयोग के लिए नियत कर लिया है। डायनुमा द्वारा बिजली की रोशनी कर बैठ जाता हूँ। नाना प्रकार के रासायनिक द्रव्य, माइक्रास्कोप और तराजू लेकर। इसी प्रकार बैठे-बैठे कभी-कभी आधी रात हो जाती है। मुझे आज विशेष खोज के बाद 'मैंगनीज' के चिन्हों का आभास मिला था। इसलिए मेरी वापसी आज विशेष उत्साह के साथ हो रही थी। उस वातावरण में कौए कांव-कांव करते हुए सिर पर से अपने-अपने नीड़ों की ओर बढ़े जा रहे थे।

इसी समय मेरे सम्मुख आकर एक बाधा खड़ी हो गई। उस निर्जन पथ के एक टीले पर पाँच शाल वृक्षों का एक व्यूह जैसा खड़ा था। उसके झुरमुट में बैठे हुए व्यक्ति को केवल एक ही ओर की संधि से देखा जा सकता था। उस समय मेघों के अन्तराल से एक आश्चर्यमयी दीप्ति फूट कर निकल रही थी। उस छायामय वातावरण के भीतर गगन की लालिमा मानो किसी दिगंगना के खुले आंचल से गिरने वाले स्वर्ण की तरह छितरा रही थी। उसी विशेष ज्योति के पथ पर वह कोमलाङ्गी बैठी थी। उन पेड़ के तने से टिक कर दोनों पैरों को छाती के समीप समेटे वह मन लगा कर कुछ लिखे जा रही थी।

मैं वृक्ष की आड़ में खड़ा-खड़ा केवल उस की ओर ताकता भर रहा। हृदय के आगारों में एक अनोखी छवि अंकित होने लगी। अपनी विशद् जानकारी के पथ पर मेरा हृदय कितने ही चक्कर काट कर प्रवेश द्वार तक आ पहुँचा था; किन्तु मैं सदैव ही उस से खिसक जाता था। लेकिन आज ऐसा जान पड़ा, मानों जीवन के किसी चरम के संघर्ष में आ गया हूँ। यह कैसे हो गया? इस का मुझे पता नहीं। मैं तो सदैव से अपने

को पर्वत की तरह नीरस समझता आया था । अनायास ही भीतर से एक झरना फूट पड़ा।

उस बाला को भी मेरे खड़े होने का कुछ आभास सा हो गया। उस ने लिखना बन्द कर दिया; किन्तु उठ न सकी। मैंने सोचा कि कहूँ—"क्षमा कीजिए! किन्तु कैसी क्षमा ? मैंने ऐसा कौनसा दण्डनीय कार्य किया था?"

यही सोचता हुआ मैं अपनी कोठी की ओर बढ़ा चला जा रहा था तभी मेरी दृष्टि नीचे पड़े दो टुकड़ों में फाड़े हुए किसी पत्र के लिफाफे पर जा पड़ी। मैंने उठा कर देखा-नाम, भवतोष, मजूमदार, आई० सी० एस० मुकाम छपरा; हाथ की लिखावट लड़कियों जैसी। टिकट लगा हुआ है; लेकिन उस पर डाक-खाने की मोहर नहीं। मेरी अक्ल ने झट समझ लिया, कि फटे पत्र के लिफाफे पर किसी दुखान्त नाटक का क्षत चिन्ह विद्यमान है और मैंने उस लिफाफे के रहस्य को जानने का भी संकल्प कर लिया।

"जियोलाजी" के अध्ययन अभ्यास के साथ भीतर ही भीतर इस रहस्योद्घाटन का काम भी चल रहा था। जिस समय मैं रेडियम का कण पाने की आशा लेकर अनुसंधान में डूबा हुआ था। उस समय मैंने कुसुमित शाल वृक्षों की छाया और प्रकाश के बंधन में कंचन को देखा था। इस में कोई शक नहीं कि इस से पूर्व भी बंगाली बाला को निहारा था; किन्तु इस स्वतंत्र और एकांत वातावरण में देखने का अवसर कभी नहीं मिला। यहाँ उस की सलोनी देह की कोमलता के साथ बन के फूल ने अपनी भाषा का स्वर मिला दिया। विदेशी कोमलांगियों के दर्शन तो बहुत किए थे, सम्भवतः वे भली भी लगी थीं; किन्तु बंगाली बाला को पहली बार ही इस प्रकार से देखा

कि उस की समग्रता को उपलब्ध किया जा सके । उसे देख कर यह प्रतीत नहीं होता कि उस का सम्बन्ध किताबों से छूटा या नहीं ······· ।

बहुत दिन पहले, बाल्यावस्था में किन्हीं वसु महाशय का जो गीत मैंने सुना था और जिसे सुन कर भी भुला दिया था, न जाने क्यों ऐसा जान पड़ा कि उस राग को सहज संगिनी में इसी बंगाली लड़की के रूप की जो भूमिका व्यंजित है, वह आज मेरी आँखों के समक्ष साकार हो उठी है।

"जियोलाजी शास्त्र" में पढ़ा था कि पृथ्वी के नीचे छुपी हुई आग्नेय सामग्री सहसा तेज भूकम्प से आंदोलितावस्था में ऊपर आ जाती है। आज अपने ही निम्न स्तर के अंधकार में छुपी हुई उसी तपी भली सामग्री को सहसा ऊपर के प्रकाश में देखा। कठोर विज्ञानी नीलमाधव के अन्तस्थल में इस प्रकार आंदोलितावस्था की मैंने कभी आशा नहीं की थी।

पता लग गया कि प्रतिदिन तीसरे पहर जब इसी मार्ग से काम से लौटा करता, तो वह मुझे विशेष दृष्टि से देखा करती, पर उसकी दृष्टि में क्या है यह अब तक मैं समझ नहीं सका था? कभी-कभी मैं मार्ग में चलता हुआ पीछे की ओर मुड़ कर देख लेता तो ऐसा लगता, कंचन मेरे ओझल होने के मार्ग की ओर देख रही है, मुझे मुड़ता देख वह अपनी दृष्टि घुमा कर उन कागजों की ओर कर लेती, जिन पर बैठी वह लिखा करती थी।

मेरे विज्ञानी मन को ऐसा लगा कि वह किसी को पाने के लिए इतना कठोर व्रत कर रही है? भवतोष विलायत से लौट कर छपरे में असिस्टेंट मजिस्ट्रेट के पद पर नियुक्त हो गया है। विलायत जाने से पूर्व इन दोनों में यहीं रहते समय गम्भीर प्रणय हो गया था; परन्तु अब पद की नियुक्ति के बाद कोई

विशेष विप्लव घट चुका है। असल बात क्या है? इस का तो जानकारी करने से ही पता लगेगा।

मेरे लिए जानकारी करना कोई कठिन कार्य नहीं था; क्योंकि मेरे सहपाठी बंकिम बाबू पटना विश्वविद्यालय में काम करते थे। उन को पत्र लिख कर डाल दिया–'बिहार की सिविल सर्विस में कोई भवतोष महाशय है। मेरे किसी मित्र ने अपनी लड़की के लिए इन्हें पसंद किया है। इस कार्य में मेरा सहयोग चाहते हैं। रास्ता पथरीला तो नहीं, इस का पूरा पता लगा कर मुझे लिखो तो मैं आभारी रहूँगा। उन महाशय का विवाह के लिए क्या मत यह भी है, लिखिये?'

पत्रका उत्तर मिला—"रास्ता पथरीले से भी अधिक बढ़ कर है। उस की राय के विषय में सुनो। जब मैं कालिज में डा० अनिलकुमार का छात्र था। जितना असाधारण उन का पांडित्य था उतना ही सरल उन का हृदय। उन की नातिन को देखो तो पता लगेगा कि सरस्वती देवी ने उन की साधना से संतुष्ट हो कर, उन के बुद्धि लोक को ही प्रकाशित नहीं किया बल्कि वह रूप सुधा को ले कर उनकी गोदी में भी आई है। तुम्हारा शैतान भवतोष उन के इसी स्वर्ग लोक में न जाने कहाँ से आन पड़ा? उस की बुद्धि प्रखर थी और वाकपटुता में वह निपुण। पहले धोखा खाया डाक्टर साहब ने और बाद में उन की नातिन ने। विवाह सम्बन्ध निश्चित हो चुका था; प्रतीक्षा थी भवतोष की विलायत से लौटने की। वहाँ का सारा खर्च डाक्टर साहब ने दिया था। सिविल सर्विस की परीक्षा पास कर के जब वह भारत आया और यहाँ के किसी उच्च पदाधिकारी की कन्या से विवाह कर लिया? उस के इस कुकृत्य और लज्जा से क्षुब्ध होकर डाक्टर साहब नौकरी को तिलांजलि दे कर अपनी नातिन के साथ कहाँ चले गये? इस का कुछ पता नहीं।"

पत्र को पढ़ कर कंचन की परिस्थिति का पूर्ण आभास हुआ। तभी दृढ़ संकल्प किया कि उस को लज्जा और अवसाद से मुक्त करूँगा।

दिवाकर अस्ताचल की ओर जा रहे थे। संध्या अपना आवरण फैला रही थी। यह समय कंचन का घर लौटने का हो गया था। तभी कोई गंवार उस के हाथ से लिखे हुए पृष्ठ छीन कर भाग खड़ा हुआ। मैंने उस का पीछा किया और उन पृष्ठों को पाने में सफल हो गया। मैंने वे सब के सब कंचन को लौटा दिये। अपनी सम्पति को वापस आया देख कंचन ने स्निग्ध दृष्टि से देखते हुए कहा—"सौभाग्य से आप········।"

मैंने कहा—"भाग भले थे कि वह आया······।"

"इस का आशय।"

स्पष्ट है।"

"मैं नहीं समझी।"

"यही कि उस की सहायता से आप के साथ ही पहली बात हो गई। इस से पूर्व यही सोचता रहता था कि कैसे और क्या बोलूँ?

"किन्तु वह तो एक···"

"क्या एक?"

"डाकू।"

"नहीं, वह डाकू नहीं, वह मेरा ही सिपाही था।"

कंचन अपने गहरे रंग की साड़ी का छोर पकड़, अपने मुह पर रख खिल खिलाकर हँस पड़ी। हँसी के रुकते ही उसने कहा—"काश यह सच होता तो बड़ा मजा आता।"

"जिस के यहाँ डाका पड़ा उस को।"

"उद्धार करने वाले के लिए क्या होता?

"उसे घर पर ले जाकर चाय पिला देती।"

"और इस नकली उद्धार कर्त्ता का क्या होगा ?"

"उस ने जो चाहा था मिल गया।"

"क्या मिल गया ?"

"परिचय की पहली बात और क्या ?"

"बस।"

"हाँ।"

"मैं चाहता हूँ।"

"क्या चाहते हैं आप ?"

"बातों का क्रम अब समाप्त न हो जाये।"

"समाप्त कैसे होगा ?"

"अच्छा यदि आप होतीं तो पहली बात आप क्या कहतीं ?"

मैं तो केवल यही पूछती कि सड़कों पर से पत्थर चुनने में लड़कपन नहीं लगता आपको ?"

"फिर आप ने पूछा क्यों नहीं ?"

"डर लगता था।"

"डर ! मुझसे।"

"हाँ, दादू से सुना था कि आप बड़े विद्वान हैं। उन्होंने बिलायत से छपा हुआ आप का लेख पढ़ा था। उन्होंने उसे मुझे समझाने का प्रयत्न किया, पर मैं समझ न सकी।"

तभी किसी की आवाज सुनाई दी—"दीदी कहाँ हो तुम ? अन्धेरा हो गया है। आज कल समय अच्छा नहीं है।" डाक्टर साहब के उपस्थित होते ही मैंने उन के चरणों की धूलि ले कर प्रणाम किया। वे तनिक सहम गये। परिचय दिया—मेरा नाम नवीन माधव सेन गुप्त है।"

उसे सुन कर वृद्ध डाक्टर का मुख उज्जवल हो उठा, बोले—

"क्या कहते हो ? आप ही डाक्टर सेन गुप्त हैं ? आप तो बच्चे हैं।"

मैंने उत्तर दिया—"अभी बच्चा ही हूँ, मैंने अभी छत्तीस को पार किया है।"

"आप को हमारे यहां चलना होगा।"

"इस के लिए कहना न पड़ेगा दादू; ये तो पहले ही चलने के लिए मुँह धोये बैठे हैं।"

मैंने मन ही मन कहा...अनर्थ हो गया ! कैसी शरारत की है कंचन ने ?

डाक्टर साहब ने उत्साहित स्वर में कहा—"आप को शायद देश और काल की···।"

"नहीं,नहीं ! मैं इन चीजों को कुछ भी नहीं समझता ! मुझे समझाने में आप का समय ही बर्बाद होगा ?"

"समय ! यहाँ समय का अभाव ही क्या है ? अच्छा, आज भोजन हमारे ही यहाँ करें।"

मैं धन्यवाद करने ही जा रहा था, कि कंचन बोल उठी—"दादू हरेक को न्यौता दे कर मुझे मुश्किल में डाल देते हो। भला इस जंगल में फिरंगी की दूकान कहां मिलेगी ? ये बिलायत के 'डिनर' खाने वाली जाति से सम्बन्धित इन्सान हैं···व्यर्थ में अपनी नातिन को बदनाम कराना चाहते हो ?"

"अच्छा, अच्छा तो कब आप को सुविधा होगी, बताइये—"वृद्ध महाशय पूछ उठे।

"मेरी सुविधा तो कल ही हो सकती है; परन्तु मैं कंचन देवी को परेशान नहीं करना चाहता। मुझे अनुसंधान के लिए बनों में जाना पड़ता है। वहाँ जो कुछ भी प्रकृति की देन के द्वारा मिलता है उसे बटोर कर ले आता हूं।"

"दादू ! इन की बातों पर विश्वास मत कीजिए...ये तो ऐसे ही कहते रहते हैं।"

मैंने सोचा यह तो अजीब लड़की है, जो कहता हूं उसी को जड़ से काट देती है। इस प्रकार वार्ता करते करते हम सब कंचन के मकान की ओर बढ़े चले जा रहे थे कि कंचन हठात् बोल उठी—"अब आप अपने शिविर को लौट जाइये।"

"क्यों ? मैंने तो सोचा था कि आप लोगों को मकान तक छोड़ आऊँ।"

"बस,बस, हम खुद ही चले जायेंगे। अस्त व्यस्त अवस्था में मकान को दिखा कर परिहास का केन्द्र नहीं बनना चाहती! उसे देखते ही मेम साहिब की याद आ जायेगी।"

बिवश हो मुझे विलग होना पड़ा। उस अवस्था में मैंने कहा— "कल आप लोगों के यहाँ जो मेरा न्योता है, वह मेरे नये नाम करण के लिए है। कल से नवीन माधव नाम का 'डाक्टर सेन गुप्त अंश छूट जायेगा।"

"तब तो नाम वर्त्तन कहिए, नामकरण क्यों कहते हैं ?"

"जैसा आप समझें।"

इसके उपरान्त मैं अपने शिविर में लौट आया। उस दिन अनुसन्धान के लिए लाये हुए पदार्थों की मैं परख नहीं कर सका। मेरा मस्तिष्क कंचन के विषय में ही सोचता रहा।

अगले दिन तनिका के तट पर कंचन के साथ हमारी पिक-निक हुई। डाक्टर साहब बालकों के समान मुझ से पूछ बैठे— "नवीन, क्या तुम विवाहित हो ?" मैंने उस भावार्थ प्रश्न का तुरन्त ही उत्तर देते हुए कहा—"अभी तक तो अविवाहित हूँ।" कंचन को किसी बात से छुटकारा नहीं ? वह बोली—"दादू !

'अभी तक' शब्द तो कन्यापक्ष वालों को सान्त्वना देने मात्र के लिए है। उन का कोई यथार्थ अर्थ नहीं।"

"यथार्थ अर्थ नहीं, यह कैसे निश्चय कर लिया ?"

"यह एक गणित की उलझन है, फिर भी उच्च गणित कहने से जो वस्तु समझी जाती है, वह यह नहीं है। यह तो पहले से ही सुनने में आया है कि आप छत्तीस साल के बच्चे हैं। इस अर्से में आप से भी पांच सात बार कहा जा चुका है कि बेटा बहू लाना चाहती हूँ। लेकिन आपने कहा—"इस से पहले मैं लोहे के सन्दूक में रुपये लाना चाहता हूँ। इस के बाद इसी अर्से में आप का सब कुछ हो गया केवल फाँसी भर शेष थी। अन्त में प्रान्तीय सरकार का बड़ा पद जुट गया तो माँ ने फिर कहा—"अब तो बेटा ब्याह करना होगा। मेरी जिन्दगी के और कितने दिन बाकी हैं ?" आपने कहा—"मेरा जीवन और मेरा विज्ञान एक है, उसे मैं देश के लिए उत्सर्ग करूँगा। मैं अभी ब्याह न करूँगा। विवश होकर फिर उन्होंने आँखों का पानी पोंछकर चुप्पी साध ली। आप के छत्तीस वर्ष का हिसाब लगाते समय मैंने कहीं गलती की हो तो कहिए, वास्तव में बताइये, संकोच की कोई आवश्यकता नहीं।"

फिर बोली—"हम लोगों के देश में आप लोग लड़कियों को जीवन संगिनी के रूप में पाते हैं। विश्व का जिस से कोई प्रयोजन नहीं, किन्तु विदेश में जो लोग विज्ञान के तपस्वी हैं, उन को तो उपयुक्त तपस्विनी ही मिल जाती है—जैसे अध्यापक क्यूरी की सहधर्मिनी मादाम क्यूरी। तो क्या वैसी कोई आपको वहां रहते नहीं मिली ?"

कंचन के कहते ही कैथेरिन की बात याद आ गई। लंदन में रहते समय साथ ही साथ काम किया था। यहां तक की, मेरी एक

रिसर्च की पुस्तक में मेरे नाम के साथ उसका नाम भी जड़ित था। बात माननी पड़ी।

कंचन ने तत्काल ही पूछा—"उन के साथ आपने विवाह क्यों नहीं किया ? वे क्या इस के लिए तैयार नहीं थी ?"

"उन्हीं की ओर से प्रस्ताव तो उठा था।"

"तब।"

"मेरा नाम भारतवर्ष का ठहरा, इस लिए······"

"यानी स्नेह की सफलता आप जैसे साधकों की कामना की वस्तु नहीं। लड़कियों के जीवन का परम लक्ष्य व्यक्तिगत है, और आप जैसे इन्सानों का नैर्यक्तिक।"

इसका उत्तर मुझे देते न बन पड़ा। मुझे चुप देख कर कंचन पुनः बोली—"बंगला साहित्य कतिपय आपने नहीं पढ़ा। उस में यही बात दिखाई गई है कि लड़कियों का व्रत पुरुष को बाँधना है और पुरुष का व्रत है उस बंधन को काट कर ऊपर लोक का मार्ग पकड़ना। कच भी देवयानी के अनुरोध की उपेक्षा कर निकल पड़ा था—आप मां का अनुनय न मान कर चल पड़े हैं। एक ही बात हुई। नारी और पुरुष में चिरकाल से चला आने वाला हो, चाहे भले ही अबला का क्रन्दन होता रहे। उस क्रन्दन से आप लोग अपनी पूजा का नैवेद्य सजा लीजिए। देवता के उद्देश्य से ही नैवेद्य की भेंट होती है ; लेकिन देवता निरासक्त ही रहते हैं।"

कंचन ने फिर कहा—"देवयानी ने कच्च को क्या शाप दिया था, जानते हैं, नवीन बाबू ?"

"नहीं।"

"अपने ज्ञान-साधन का फल आप स्वयं न सोच सकेंगे। हां, दूसरों को दान कर सकेंगे।" "मुझे यह बात कुछ अजीब सी

लगती है। यदि यह श्राप आज कोई विदेशी लोगों को देता, तो वह बच जाता। विश्व की सामग्री को अपनी सामग्री के समान व्यवहार करने की वजह से ही यूरोप वाले लालच के द्वार पर मरते हैं।"

उस दिन जो बातें हुईं वे केवल हास्य व्यंग्य ही नहीं थी। उन में युद्ध की ओर संकेत था। कंचन के साथ जब मेरा सम्बन्ध सजह हो आया था, इस पर भी मैं कंचन के सन्मुख खड़े होकर उसकी चरम अभिलाषा की थाह पाने का कोई उपाय खोज नहीं पाया।

हाँ, अवश्य एक दिन पिकनिक के समय यह सुयोग मिल गया। उस समय डाक्टर साहब शिवालय के खंडहर की सीढ़ी पर बैठकर रसायन शास्त्र की कोई नई आई हुई पोथी पढ़ रहे थे। एक आबनूस के पेड़ की झाड़ी में बैठ कर कंचन अचानक कह उठी—"इस महाकाल के बन में एक अंधी प्राण शक्ति है, उस से भय ग्रस्त हूँ।"

कंचन कहती गई—"पुराने भवनों के दरार से लुक छिप कर पीपल का अंकुर निकलता है, और फिर धीरे-धीरे अपनी जड़ों से उसे बुरी तरह जकड़ लेता है। यह भी वैसा ही है। दादू के साथ यही बात हो रही थी। दादू कह रहे थे, बस्ती से बहुत दिनों तक दूर रहने से प्रकृति के प्रभाव से मानव का चित्त दुर्बल हो आता है और आदिम प्राणी प्रकृति का असर प्रखर हो उठता है।"

मैंने उत्तर दिया—"बताता हूँ। मेरी बात को भली-भाँति सोच देखियेगा। मेरा विचार यह है कि ऐसे अवसरों पर मानव का संग भीतर और बाहर से मिलना चाहिए, जिस का प्रभाव मानव प्रकृति को पूर्ण कर सके। जब तक यह नहीं होगा तब

तक अंध शक्ति से पराजित ही होना पड़ेगा। काश आप मामूली……"

"हाँ, हाँ कहिये, संकोच मत कीजिये।"— कंचन ने शीघ्रता से कहा।

"यह तो जानते ही हैं कि मैं वैज्ञानिक हूँ, अतः जो कहने जा रहा हूँ उसे व्यक्तिगत आसक्ति से रहित हो कर ही कहूँगा। आपने एक दिन भवतोष को बहुत स्नेह से देखा था, क्या आज भी उसे उसी प्रकार…………"

"समझ लीजिए, नहीं करती…तब।"

"मैंने ही आप के मन को उधर से हटाया है।"

"सम्भव हो सकता है; लेकिन आपने ही नहीं, बल्कि इस अंध शक्ति ने भी। इसलिए मैं इस हटने को श्रद्धा की दृष्टि से नहीं देखती।" "ऐसा क्यों?"

"दीर्घ काल के प्रयास से मानव चित्र शक्ति में अपने आदर्श की रचना करता है, प्राण शक्ति की अंधता उस आदर्श को तोड़ देती है। आपके प्रति जो मेरा प्रेम है, वह उसी अंध शक्ति के आक्रमण का फल है।"

"नारी हो कर भी आप प्रेम पर ऐसा अपवाद मढ़ती हैं?"

"नारी होने के कारण ही ऐसा कह रही हूँ। प्रेम का आदर्श हमारे लिए पूजा की सामग्री है। उसी को सतीत्व कहते हैं। सतीत्व एक आदर्श है। यह सामग्री बन की प्रकृति की नहीं है, मानवी की है। इस निर्जन में इतने दिनों से इसी आदर्श की पूजा कर रही थी। सारे आघातों को सहने और धोखा खाने के बाद भी उसे बचा सकी, तो मेरी पवित्रता भी नहीं जायेगी।

"क्या भवतोष के लिए अब भी श्रद्धा का स्थान है?"

"नहीं।"

"उस के पास जाना चाहती हो।"

"नहीं।"

"तो फिर।"

"कुछ भी नहीं।"

"मैं आशय नहीं समझा।"

"आप समझ भी नहीं सकेंगे। आप की सम्पत्ति ज्ञान है उच्चतर शिखर पर वह भी इम्पर्सनल है। नारी सम्पत्ति हृदय की सम्पत्ति है। यदि उस का सब कुछ चला जाये, वह सब कुछ जो बाहरी है, जिसे स्पर्श किया जा सकता है तब भी उस प्रेम में वह वस्तु बच रहती है, जो कि इम्पर्सनल है।"

"वाद विवाद में समय नष्ट न कीजिए। मुझे कुछ ही दिनों में खोज करने के अभिप्राय: से अन्यत्र कहीं चला जाना होगा किन्तु······।"

"फिर गये क्यों नहीं?"

"आपसे······।"

तभी कंचन ने पुकारा—"दादू!"

डाक्टर साहब अपना पढ़ना लिखना छोड़कर उठ आये और मधुर स्नेह के स्वर में बोले—"क्या है दीदी?"

"आपने उस दिन कहा था न कि मनुष्य का सत्य उसी की तपस्या के भीतर से अभिव्यक्त हुआ है। उसकी अभिव्यक्ति प्राणी शास्त्र से समझी जाने वाली अभिव्यक्ति नहीं है?"

"हाँ, बिल्कुल ठीक······।"

"दादू, तो फिर आज अपनी और आपकी बात का निर्णय कर दूँ। कई दिनों से मस्तिष्क उथल-पुथल का केन्द्र बना हुआ है।"

मैं उठ खड़ा हुआ, बोला—"तो मैं चलूं।"

"नहीं ! आप बैठिये। दादू, आपका वही पद फिर खाली हुआ है और सैक्रेटरी ने पुनः आपको बुलवाया भी है।"

"हाँ तो फिर ......।"

"आपको उस पद को स्वीकार करना होगा......अति शीघ्र वहीं लौट जाना होगा।"

डाक्टर साहब बेचारे हतबुद्धि होकर कंचन के मुँह की ओर तकते रहे। कंचन बोली—"अच्छा, अब समझी, आप इसी सोच में पड़े हैं, कि मेरी क्या गति होगी ? यदि अहंकार की मात्रा बहुत न बढ़ती हो, तो आप को यह बात स्वीकार करनी ही होगी कि मेरे बिना आप का एक दिन भी नहीं चल सकता। मेरी अनुपस्थिति में तो पंद्रहवीं आश्विन को आप पंद्रहवीं अक्टूबर समझ बैठते हो। जिस दिन घर में अपने सहयोगी अध्यापक को भोजन के लिए आमंत्रित करते हो, उसी दिन लायब्रेरी का द्वार बन्द कर के कोई 'निदारुण ईक्वेशन' सुलझाने में लग जाते हो। नवीन बाबू सोचते होंगे कि, मैं बात बढ़ा चढ़ा कर कह रही हूँ।"

"आज ऐसी अशुभ बातें...... ।"

सब अभी खत्म हो जायेंगी। आप चलें तो मेरे साथ अपने काम पर छूटी हुई गाड़ी फिर लौट आयेगी।"

डाक्टर साहब मेरी ओर देख कर बोले—"तुम्हारी क्या सलाह है नवीन ?"

मैं क्षण भर स्तब्ध रह कर बोला—"कंचनदेवी से अधिक अच्छा परामर्श कोई नहीं दे सकता।"

कंचन ने उठ कर मेरे चरण छूकर प्रणाम किया। मैं संकुचित होकर पीछे हट आया। कंचन बोली—"संकोच न कीजिए। आपकी तुलना में मैं कुछ भी नहीं हूँ...यह बात किसी दिन

साफ हो जायेगी ? आज आपसे यहीं अंतिम बिदा लेती हूँ, जाने से पूर्व अब भेंट न होगी।

"यह कैसी बात कह रही हो, दीदी? "—डाक्टर साहब ने पूछा।

"दादू······" इतना ही कह सकी कंचन।

मैंने उसी क्षण डाक्टर साहब की पग धूलि का स्पर्श किया। उन्होंने छाती से लगा कर कहा—"मैं जानता हूँ नवीन कि, तुम्हारी कीर्ति का पथ तुम्हारे सामने प्रशस्त है।"

अपने स्थान पर लौट कर पहला रिकार्ड निकाला। उसे देखते ही मन में सहसा आनन्द उमड़ आया। समझा मुक्ति इसी को कहते हैं। संध्या बेला में दिन भर का काम समाप्त कर के बरामदे में आते ही अनुभव हुआ······पंछी पिंजरे से तो निकल आया है, किन्तु उसके पाँवों में जंजीर की एक कड़ी अब भी उलझी हुई है······हिलते-हिलते वह बज उठती है।